वर्ष : ४ अंक : २३ मार्च-अप्रैल १९९४

ऋषि प्रसाद

द्विमासिक

सदैव सम और प्रसन्न रहना ईश्वर की सर्वोपरि भक्ति है ।
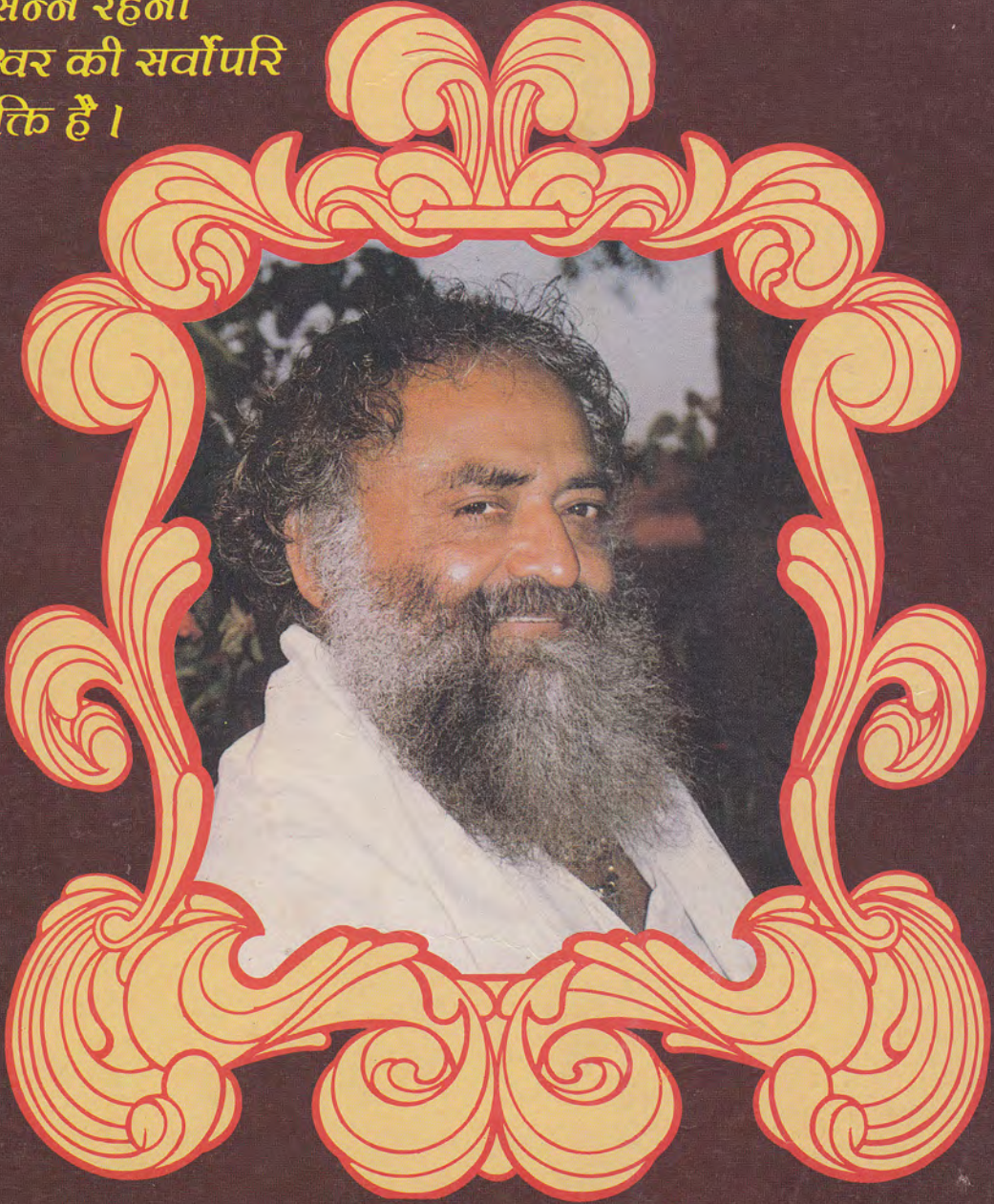
पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

वर्ष : ४

अंक : २३

मार्च-अप्रैल १९९४

तंत्री : के. आर. पटेल

शुल्क वार्षिक : रू. २५/-

आजीवन : रू. २५०/-

परदेश में वार्षिक : US$ १५ (डॉलर)

आजीवन : US$ १५० (डॉलर)

कार्यालय :

'ऋषि प्रसाद'

श्री योग वेदान्त सेवा समिति

संत श्री आसारामजी आश्रम

साबरमती, अहमदाबाद-३८० ००५.

फोन : ४८६३१०, ४८६७०२

परदेश में शुल्क भरने का पता :

International Yoga Vedanta Seva Samiti

8 Williams Crest,

Park Ridge, N. J. 07656 U.S.A.

Phone (201) - 930 - 9195

टाईपसेटींग : पूजा लेसर पॉईन्ट

प्रकाशक और मुद्रक : श्री के. आर. पटेल

श्री योग वेदान्त सेवा समिति,

संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती,

अहमदाबाद-३८० ००५ ने

भार्गवी प्रिन्टर्स, राणीप, अहमदाबाद में

छपाकर प्रकाशित किया।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction.

अनुक्रम

'ऋषि प्रसाद' हर दो महीने में ९ वीं तारीख को प्रकाशित होता है।

कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

गीता-अमृत

श्रीमद् भगवद्गीता में भक्तों का वर्णन आता है कि चार प्रकार के भक्त मेरा भजन करते हैं। चारों सुकृती हैं, श्रेष्ठ हैं, उच्च हैं, ऐसा भगवान ने कहा है।

सुकृती दो प्रकार के होते हैं : बहिरंग सुकृती और अंतरंग सुकृती। यज्ञ, होम-हवन करना और उसके द्वारा सुख पाने की इच्छा रखना सुकृत है। भगवान का अवलम्बन लेकर भगवान के लिए ही होम-हवन-यज्ञ आदि करना, उनकी प्रसन्नता के लिए ही कर्म करना सुकृत है। लेकिन उसका फल भविष्य में स्वर्ग मिले या संसार का सुख मिले यह नहीं, अपितु भगवान की प्रसन्नता और भगवान की कृपा मिले। बहिरंग की अपेक्षा यह अंतरंग सुकृत अनंत गुना हितकारी है।

जिन लोगों को जगदीश्वर सच्चा लगता है और उससे प्रीति है, ऐसे लोग भी दुःख मिटाना चाहते हैं, धन चाहते हैं, सुख चाहते हैं, परंतु भगवान के द्वारा पाना चाहते हैं, ईश्वर की कृपा को साथ रखकर सब चाहते हैं। धन कमाने की वृत्ति तो है, अर्थार्थी तो है परंतु चाहता है कि अर्थ भगवान की कृपा से मिले। अगर अर्थ मिल गया तो भगवान की कृपा समझकर उसको भगवान के प्रति प्रीति होने लगेगी। भगवान के प्रति प्रीति बढ़ने से अर्थ की आसक्ति कम होती जाएगी। धन के दाता भगवान को मानते हैं और धन की इच्छा रखते हैं तब मुख्य वृत्ति धन में और गौण वृत्ति भगवान में होती है। धन मिल जाने से मुख्य वृत्ति भी धन से हटकर परमात्मा में लग जाएगी। उनके मन में उदारता होगी। जो कुछ है सब भगवान का है ऐसा मानने से वह धन को, परिवार को और आगे चलकर अपने अहम् को भी भगवान को समर्पित कर सकेगा। परम उदार परमात्मा से संबंध रखने से वह भी परम उदार हो जाएगा। निर्दोष, निःसंग हो जाएगा। संसार के यश, मान, कीर्ति से बेपरवाह हो जाएगा।

एक महात्मा थे। देवता लोग उनसे प्रसन्न हुए और वरदान देने को उत्सुक हुए। महात्मा ने कहा :''मुझे वरदान की कोई आवश्यकता नहीं है।''

देवताओं ने कहा : '' आपके पास वरदान होगा तो उससे अनेक लोगों का भला आपसे होगा। दुनिया में आपका नाम होगा।''

महात्मा : '' मेरा कोई नाम नहीं। क्योंकि देह तो मैं हूँ नहीं ! जिनसे सारी सृष्टि चल रही है उसका तो कोई नाम नहीं, फिर भी सब नाम उसीके हैं। जो जिस नाम से पुकारता है, उसे उस नाम से लाभ हो जाता है। एक ही नाम होता तो दूसरे नाम से पुकारनेवाले को लाभ नहीं होता। पर सब नाम उसकी सत्ता से प्रकट होते हैं। सब यश उसका है। मुझे कुछ नहीं चाहिए।''

देवताओं ने सोचा कि यह आदमी इतना उदार है तो उसके पास बल और योग्यता भी होनी चाहिए। उन्होंने कहा : ''हम देवता लोग वरदान देने को आते हैं तो ऐसे ही वापस नहीं जाते। हम आपको वरदान देंगे ही। हम ऐसा वरदान देते हैं कि आप जो कहो वह होने लग जाए, आप जिसको छूओ उसका रोग दूर हो जाए, आप जहाँ से गुजरो वहाँ सब हरा-भरा हो जाए।''

महात्मा :''ऐसा मत करो। लोग मेरे पीछे लग जाएँगे। मेरा समय नष्ट होगा और वे ईश्वर को भूलकर मुझे पकड लेंगे।''

देवताओं ने दूसरा उपाय बताया : '' आप जहाँसे भी गुजरो वहाँ आपकी छाया जिन पर पड़े वह रोगी रोगमुक्त हो जाए, बिना फल का पेड़ फलवाला हो जाए।''

महात्मा : '' यह सब तो ठीक है। आप दिये बिना रहेंगे ही नहीं तो ऐसा कीजिए कि जब छाया मेरे सामने नहीं किन्तु पीछे पड़ती हो, तब यह बात हो

''मेरा कोई नाम नहीं। क्योंकि देह तो मैं हूँ नहीं ! जिनसे सारी सृष्टि चल रही है उसका तो कोई नाम नहीं, फिर भी सब नाम उसीके हैं।

तो ठीक है जिससे मुझे कोई पता न चले ।''

परमात्मा का संबंध याद रखने से वे महात्मा निःसंग निर्लेप हो गये ।

विषयी आदमी तो विषयों का भजन करते हैं । जो दुष्कृत्य करते हैं, उनका ज्ञान माया के प्रभाव से अपहृत हो जाता है । इसलिए ऐसे लोग भगवान का भजन नहीं करते, भगवान को मानते नहीं, ईश्वर तत्त्व का स्वीकार नहीं करते । किसीको अपने से बड़ा या अपने से ज्यादा बुद्धिमान मानने को तैयार नहीं होते । ऐसे अहंकार से आक्रांत चित्तवाले लोग दंभी होते हैं ।

विषयी आदमी तो विषयों का भजन करते हैं । जो दुष्कृत्य करते हैं, उनका ज्ञान माया के प्रभाव से अपहृत हो जाता है । इसलिए ऐसे लोग भगवान का भजन नहीं करते ।

आद्य शंकराचार्यजी ने कहा है : 'भीतर भक्तिभाव, योग्यता न हो और बाहर योग्यता दिखाने का प्रयत्न करे वह मनुष्य दंभी है । अपने वास्तविक स्वरूप का भान नहीं और देह को ही 'मैं' मानते हैं । देह की विशेषता के लिए उत्सुक रहते हैं । ऐसे लोगों में दंभ के साथ बाकी के दोष भी आने लगते हैं । दूसरों के धन, पद, प्रतिष्ठा आदि देखकर दर्प होता है । दर्प से कठोरता आती है । उससे कटु भाषण और उससे अभिमान बढ़ता है । इन सबका कारण अज्ञान है ।'

अपने स्वरूप का ज्ञान न होने के कारण अथवा जगन्नियंता या सृष्टि का चलानेवाला कोई है ऐसा स्वीकार नहीं करनेवाले लोगों में अज्ञान जोर पकड़ता है । वे दुष्कृती हो जाते हैं । वे विद्वान और बुद्धिमान भी होते हैं, लेकिन अपनी विद्वत्ता को खुद को दुष्कृती बनाने में लगाते हैं । अंत में आप परेशान होते हैं और दूसरों को भी परेशान करते हैं । ऐसे लोगों के पास थोड़ी-बहुत तर्क की शक्ति होती है उसके बल पर वह मिथ्या जगत को सच्चा साबित करने की कोशिश करते हैं । ऐसा नहीं कि ज्ञानी के पास तर्क की शक्ति नहीं है । पर ज्ञानवान ऐसे लोगों से बहस करना उचित नहीं समझते हैं, जो अपने अहंकार को अज्ञान के आधार पर सजाए रखते हैं ।

अपने स्वरूप को ज्ञान न होने के कारण अथवा जगन्नियंता या सृष्टि का चलानेवाला कोई है ऐसा स्वीकार नहीं करनेवाले लोगों में अज्ञान जोर पकड़ता है ।

ईश्वर की सृष्टि में लीला होती है और ऐसे अज्ञानी सोचते हैं कि हमने किया । क्योंकि वे भगवान के भक्त भी नहीं और भगवद्तत्त्व का उन्हें ज्ञान भी नहीं । यह मन, बुद्धि, शरीर, इन्द्रियाँ, अहंकार सब उसका है और जो कुछ होता है सब उस अनन्त की शक्ति से होता है तो करनेवाले हम कौन होते हैं ? ऐसा सोचना-समझना उनके बस की बात नहीं ।

एक न्यायाधीश के पास एक लड़का आया था किसी कारणवश । न्यायाधीश ने उसे कुछ पूछा तब उसने बताया कि बाप के पैसे से पढ़ता हूँ ।

न्यायाधीश ने उसे सच्ची बात समझायी कि सिर्फ बाप के पैसे से कोई नहीं पढ़ता । सब लोगों के पैसे से पढ़ते हैं । क्योंकि सरकार कालेज खुलवाती है, मकान बनाने में पैसे खर्च करती है, अध्यापकों को पगार देती है । सरकार खर्च के ये पैसे समाज के सभी वर्गों से टेक्स के रूप में लेती है और तब स्कूल, कालेज चलवाती है । उसमें हमारे बच्चे पढ़ते हैं । हम समझते हैं, हमने बच्चे पढ़ाये, डॉक्टर, इंन्जिनियर, एडवोकेट बनाये ।

न्यायाधीश की बात भी ठीक है । लेकिन सत्य तो यह है कि वह लड़का या न्यायाधीश या तुम-हम सब उस अनन्त की सत्ता से हैं । सूर्य की किरणें, हवाएँ, जल, पृथ्वी, आकाश सब उसीका है । साँस भी उस परमात्मा की

सत्ता से चलती है। 'हमने' किया ऐसा हम मानें यह हमारी नासमझी है। उससे अहंकार पैदा होता है। अहंकार से मन विमूढ़ हो जाता है, बुद्धि कुंठित हो जाती है। अहंकार के वश जो अपने को कर्म का कर्त्ता मानता है, उसका कुफल भी उसको मिलता है।

अच्छे कर्मों का फल सुख है, लेकिन उस सुख के लिए मजदूरी करो, फिर वह सुख बना ही रहे, ऐसी लालसा और सुख चला न जाए उसका भय बना रहता है। दुःख तो दुःख है ही, लेकिन संसार में जिसे हम सुख मानते हैं वह भी खतरों से खाली नहीं। इसलिए बिना मेहनत के शाश्वत सुख पाना चाहते हो तो प्रभु से नाता जोड़ लो। हालांकि हमारा नाता जुड़ा हुआ ही है पर मानते नहीं, जानते नहीं। जुड़ा हुआ मानें तो हमारा बेड़ा पार ही है। भगवान हमारे हैं और हम भगवान के हैं - यह बात चाहे मानो या न मानो पर सब ईश्वर के ही हैं।

बिना मेहनत के शाश्वत सुख पाना चाहते हो तो प्रभु से नाता जोड़ लो। हालांकि हमारा नाता जुड़ा हुआ ही है पर मानते नहीं, जानते नहीं। जुड़ा हुआ मानें तो हमारा बेड़ा पार।

विकृत चित्तवाले व्यक्तियों में परमात्मसत्ता का राक्षसी रूप दिखाई देता है। दुष्कृत हृदयों में वह सत्ता का राक्षसी रूप दिखाई देता है। अगर कोई कहे कि भगवान इस जगत का संचालन करते हैं, उनकी सत्ता से सृष्टि चलती है तो इतना पाप और मुसीबत क्यों बढ़ रहे हैं ?

तो जैसे अलग-अलग साधनों में बिजली की शक्ति अलग-अलग रूप में प्रगट होती है, अलग-अलग परिणाम देती है, उसमें कुछ गड़बड़ हो तो उसके लिए बिजलीशक्ति को दोष नहीं दे सकते।

इसी तरह परमात्मा दुषित नहीं है। साधन की अयोग्यता के लिए बिजली शक्ति कसुरवार नहीं। वैसे ही जैसा अंतःकरण होता है, उसके अनुसार परमात्मा की शक्ति का रूप प्रगट दिखाई पड़ता है। वह परमात्मा तो परम निर्दोष निःसंग है।

जो दुष्कृती है वह ईंट, लोहे, लक्कड़ के मकान में, परिवार में, दंभ में, दर्प में, अहंकार में अपना जीवन नष्ट कर देता है। वह भगवान की भक्ति, स्मरण, साधना या समाज की सेवा में अपने समय-शक्ति का सदुपयोग नहीं करता, नाटक की उटपटांग बातें करता रहता है।

ऐसे लोगों में अपने को दूसरों से उत्कृष्ट दिखाने की उत्कंठा होती है। जो भक्त हैं उनमें ऐसी थोड़ी बहुत उत्कंठा होने की संभावना है, फिर भी ऐसे लोग अनघ हैं, अच्छे कर्म करनेवाले हैं, उदार हैं, धर्मात्मा हैं। चारों को परमात्मा के नाम का अवलंबन है। उनमें ज्ञानी है, वह परमात्मा को विशेष प्यारा है। जिसमें अपनी उत्कृष्टता दिखाने की वासना नहीं, पर अपना आपा मिलाने की उत्सुकता है वह ज्ञानी हो जाता है। परमात्मा का प्यारा हो जाता है।

चित्त की वृत्तियाँ एक जैसी नहीं रहती। वे निरंतर बदलती रहती हैं। बाहर के साधनों में, व्यक्ति में, परिस्थिति में प्रीति है और सब बदलता रहेगा तो दुःख और परेशानी होगी। समाज में भी झगड़े का मूल यही नासमझी है। प्रज्ञा के दोष से दुःख और परेशानी आती है और बुद्धि की कमजोरी के कारण बढ़ती रहती है। कोई चीज पाने की इच्छा हुई, पर वह नहीं मिली तब तक उसे पाने की तड़प बनी रहती है और मिल जाती है तो उसकी तड़प तो मिट जाती है, पर फिर किसी और की इच्छा उठ खड़ी होती है। जैसे शादी नहीं हुई है, तो शादी हो जाय यह इच्छा मन में रहती है। कभी सत्ता की चाह होती है तो कभी धन की चाह होती है। लेकिन जिसकी चाह होगी वह मिलेगा तो थोड़ी देर चित्त शांत रहेगा। फिर दूसरी चाह उठ खड़ी होगी। उसकी तृप्ति के लिए चित्त पुनः अशांत होगा। आत्मा-परमात्मा की प्राप्ति में ही चित्त पूर्ण विश्रांति पा सकता है, अन्यथा नहीं। अतः आत्मा-परमात्मा की प्राप्ति ही मनुष्य जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य होना चाहिए।

परमहंसों का ॐ प्रसाद

दुःखों से मुक्ति

एक होती है सत्-वस्तु, दूसरी होती है असत्-वस्तु । मन की जो कल्पनाएँ हैं, मन के जो फुरने हैं वह है असत्-वस्तु । 'यह करूँगा तो सुखी होऊँगा', 'यह पाऊँगा तो सुखी होऊँगा', 'यहाँ जाऊँगा तो सुखी होऊँगा'... इन वस्तुओं में उलझ-उलझ कर ही हमने अपने जीवन को टुकड़े-टुकड़े कर डाला है ।

सत्-वस्तु से तात्पर्य है सत्संग के द्वारा सत्त्वगुण बढ़ाकर हम सत्य-स्वरूप को पा लें । दो चीजें होती हैं : एक होती है नित्य, दूसरी होती है अनित्य । बुद्धिमान व्यक्ति वही है जो अनित्य वस्तु की बजाय नित्य वस्तु को पसंद करे, असत् के स्थान पर सत्-वस्तु को पसंद करे । वास्तव में सत्-वस्तु तो एक ही है और वह है परमात्मा । फिर उसे परमात्मा कहो या आत्मा, ब्रह्म कहो या ईश्वर, राम कहो या शिव, सब तत्त्वरूप से एक ही हैं ।

मानव को जो नित्य है उसकी प्राप्ति का यत्न करना चाहिए और जो अनित्य है उसका उपयोग करना चाहिए । परंतु हम करते क्या हैं ? जो नित्य है उसकी ओर ध्यान ही नहीं देते और अनित्य की प्राप्ति में ही अपना पूरा जीवन नष्ट कर डालते हैं । जो वस्तु मिलती है वह पहले हमारे पास नहीं होती तभी तो मिलती है और बाद में भी वह हमारे पास से चली जाती है क्योंकि वह अनित्य है । जो पहले नहीं था वह मिला और जो मिला उसे छोड़ना ही पड़ेगा । किन्तु परमात्मा मिलता नहीं इसलिए वह छूटता भी नहीं, क्यों ? क्योंकि वह सदा प्राप्त है ।

ऐसी कोई मिली हुई वस्तु नहीं जिसे आप सदा रख सकें । आपको जो वस्तु मिली, मिलने से पूर्व वह आपके पास नहीं थी, तभी तो मिली । अतः जो वस्तु आपको मिली वह आपकी नहीं है और जो आपकी नहीं है, वह आपके पास सदा के लिए रह भी नहीं सकती । देर-सबेर उसे आपको छोड़ना ही पड़ेगा या तो वह वस्तु स्वयं आपको छोड़कर चली जायेगी । चाहे फिर नौकरी हो, चाहे मकान हो, चाहे परिवार हो, चाहे पति हो, चाहे पत्नी हो, चाहे तुम्हारी स्वयं की देह ही क्यों न हो ? देह भी तुम्हें मिली है अतः देह को भी छोड़ना पड़ेगा । बचपन मिला था, बचपन छूट गया । जवानी तुम्हें मिली है, जवानी छूट जायेगी । बुढ़ापा तुम्हें मिलेगा वह भी छूट जायेगा । मौत भी आकर छूट जायेगी लेकिन तुममें मिलना और छूटना नहीं है, क्योंकि तुम शाश्वत हो ।

जो मिली हुई चीज है उसको आप सदा रख नहीं सकते और अपनेआपको आप छोड़ नहीं सकते । कितना सनातन सत्य है ! कितना सरल और स्वाभाविक सत्य है ! लोग बोलते हैं कि संसार को छोड़ना कठिन है किन्तु संत कहते हैं, संतों का अनुभव है कि संसार को सदा रखना असंभव है और परमात्मा को छोड़ना असंभव है । ईश्वर को आप छोड़ नहीं सकते और संसार को आप रख नहीं सकते ।

मानव को जो नित्य है उसकी प्राप्ति का यत्न करना चाहिए और जो अनित्य है उसका उपयोग करना चाहिए ।

बचपन को आपने छोड़ने की मेहनत की थी क्या ? नहीं, छूट गया । जवानी को छोड़ना चाहते क्या ? अपनेआप छूट रही है । बुढ़ापे को आप छोड़ना चाहते हो क्या ? अरे, आप रखना चाहो तो भी छूट जायेगा । ऐसे ही निंदा छोड़ूँ... स्तुति छोड़ूँ... मान छोड़ूँ...

अपमान छोड़ूँ... नहीं। सब अपने आप छूटते जा रहे हैं। एक साल पहले जो तुम्हारी निंदा-स्तुति हुई थी उसका दुःख या सुख आज तुम्हें होता है क्या ? नहीं, पुराना हो गया। पहले दिन जो निंदा हुई, वह बड़ी भयानक लगी होगी, जो स्तुति हुई वह मीठी लगी होगी, किन्तु आज देखो तो पुरानी हो गयी, तुच्छ हो गयी। उस दिन को याद कर लेना जिस दिन आपकी सगाई हुई थी। वह खुशी छोड़नी पड़ी कि छूट गयी ? संसार की ऐसी कोई परिस्थिति नहीं जिसे आप रख सकें। आपको छोड़ना नहीं पड़ा है भैया ! सब छूटा चला जा रहा है। जिसको आप छोड़ नहीं सकते वह है सत्-वस्तु और जिसको आप रख नहीं सकते वह है असत्-वस्तु। अतः असत् का उपयोग करो और सत् का साक्षात्कार कर लो। सत्संग यही सिखाता है।

लोग बोलते हैं कि संसार को छोड़ना कठिन है किन्तु संसार को सदा रखना असंभव है और परमात्मा को छोड़ना असंभव है।

दो वस्तु देखी गयी है : एक वह है जो बह रही है और दूसरी वह है जो रह रही है। बहने वाली वस्तु है संसार और रहने वाली वस्तु है परमात्मा। बहने वाली वस्तु में बहने का मजा लो और रहनेवाली वस्तु का साक्षात्कार करके रहने का मजा ले लो तो सदा मजे में ही रहोगे। व्यक्ति तब दुःखी होता है जब बहनेवाली वस्तु को रखना चाहता है और रहनेवाली वस्तु से मुख मोड़ लेता है।

जब-जब दुःख और मुसीबतों से व्यक्ति घिर जाये तब-तब वह समझ ले कि बहने वाली मिथ्या जगत की आसक्ति उसको परेशान कर रही है और रहने वाली आत्मा के विषय का उसको ज्ञान नहीं है, उसकी प्रीति नहीं है इसीलिए वह परेशान है। जब भी मुसीबत आये... दुःख, चिंता, शोक, भय ये तमाम प्रकार की जो मुसीबतें हैं, इन सारी मुसीबतों का एक ही इलाज है कि बहनेवाली वस्तु को बहनेवाला मानो और रहने वाली आत्मा से प्रीति कर लो तो सारी परेशानियाँ भाग जायेंगी।

जिसने सृष्टि की रचना की है वह सृष्टिकर्त्ता जगन्नियंता तुम्हारा शत्रु तो है नहीं। किसी भूत-प्रेत या असुर-राक्षस ने तो सृष्टि की रचना नहीं की है। वरन् सर्वसमर्थ परमात्मा ने सृष्टि की रचना की है और वही परमात्मा सभी के हृदय में वास कर रहा है।

सुहृदम् सर्वभूतानां...

वह जो भी करता है तुम्हारे हित के लिए ही करता है। जब तुम्हारे जीवन में दुःख, परेशानी और संघर्ष आता है तब वह हृदयस्थ परमात्मा तुम्हें याद दिलाता है कि ये तुम्हें अच्छा नहीं लग रहा है। अच्छा नहीं लग रहा है तो तुम अपनी मान्यता को बदलो, पकड़ को बदलो।

जिसने सृष्टि की रचना की है वह सृष्टिकर्त्ता, जगत् नियंता तुम्हारा शत्रु तो है नहीं। वह जो भी करता है तुम्हारे हित के लिए ही करता है।

एक लड़के ने अपने भाई से कहा : ''आज तेरी खैर नहीं। पप्पा आयेंगे और तेरी ऐसी पिटाई होगी, ऐसी पिटाई होगी कि तू जिंदगी भर याद रखेगा। मैं पप्पा को कहकर आया हूँ.... तेरी सब बातें बताकर आया हूँ।''

तब दूसरे ने कहा : ''पप्पा जब पिटाई करेंगे तो मेरी भलाई के लिये करेंगे, मेरे दोषों को निकालने के लिए करेंगे। इससे तुझे क्या फायदा होगा ? अभी तो पिटाई कर नहीं रहे, फिर मैं अभी से दुःखी क्यों होऊँ ?''

ऐसे ही जगत् में जो प्रतिकूलताएँ आती हैं, दुःख आते हैं, संघर्ष आते हैं, तो वह

जगत्-पिता इस रूप में तुम्हारी पिटाई करता है। पिटाई यदि करता भी है तो तुम्हारे दोष निकालने के लिए, आसक्ति निकालने के लिए, अहंकार निकालने के लिए, ममता निकालने के लिए करता है। तुम्हारी बेवकूफी निकालने के लिए प्रतिकूलताएँ देता है इसमें चिंता की क्या बात है ? प्रतिकूल प्रसंगों के माध्यम से ही वह तुम्हें संदेश देता है कि देख ले, यही है संसार ! इन बहने वाली चीजों को रहनेवाली समझकर तुम सदा एक जैसा रहना चाहते थे न ! एक जैसा तो ब्रह्माजी का पद भी नहीं रहा तो तुम्हारा पद कैसे रह सकता है ? तुम्हारी दुकान, तुम्हारा आफिस, तुम्हारे रिश्ते-नाते, तुम्हारे मित्र एक जैसे कैसे रह सकते हैं ? कई लोग फरियाद करते हैं कि मेरा पति पहले जैसा नहीं रहा, मेरी पत्नी पहले जैसी नहीं रही, मेरा बेटा पहले जैसा नहीं रहा। अरे भैया ! तुम पहले जैसे कहाँ रहे ? तुम्हारा शरीर पहले जैसा कहाँ रहा ?

खून पसीना बहाता जा।
या तान के चादर सोता जा।
यह किश्ती तो हिलती जायेगी।
तू हँसता जा या रोता जा ॥

ये परिवर्तन तो होते ही रहेंगे। पति-पत्नी का जो प्रारंभिक प्रेम होता है वह बालक के आने के बाद नहीं रहता, बालक के प्रति बँट जाता है। दूसरा बालक आने पर पहले बालक का प्रेम भी दूसरे के प्रति बँट जाता है। बच्चे बड़े हो जाते हैं तो प्रेम संसार की ओर बँट जाता है। एक बालक को जो मजा माँ की गोद में आता है, बड़े होने पर उतना मजा थोड़े ही आयेगा ! परिस्थितियाँ बदल जाती हैं, इन्द्रियाँ बदल जाती हैं, मन बदल जाता है, चित्त बदल जाता है। तो मानना पड़ेगा कि ये बहनेवाली चीजें हैं। कबीरजी ने क्या सुन्दर भजन गाया है !

निरंजन बन में साधु अकेला खेलता है...

बहने वाली चीजें इन्द्रियों से अर्थात् अंजन से दिखती हैं किन्तु रहनेवाली चीज इन्द्रियों से नहीं दिखती इसीलिए वह निरंजन है। इन्द्रियाँ उससे सब देखती हैं, लेकिन इन्द्रियों से उसको नहीं देखा जाता है।

तन की कुंडी मन का सोटा
हरदम बगल में रखता है।
पाँच-पच्चीस मिलकर आयें
उनको घोट पिलाता है ॥
निरंजन बन में साधु अकेला खेलता है...

ऐसा साधु जिसने निरंजन वन में (इन्द्रियों से रहित साम्राज्य में) प्रवेश पाया है वह शरीर को 'मैं' नहीं मानता। शरीर को कुण्डी (खरल) मानता है और मन को सोटा (खरल में पीसने का दस्ता) मानता है और उसका उपयोग करता है। ब्रह्मविद्या की बूटी, सत्संग की बूटी को घोटकर उसके पास आनेवालों को पिलाता है। इस दैवी कार्य में देह का सदुपयोग करता रहता है। अर्थात् उसकी देह का उपयोग लोक-कल्याण के लिए सत्संग द्वारा हो जाता है।

रहनेवाली चीज (परमात्मा) में प्रीति हो और बहनेवाली चीज (संसार) का उपयोग हो। हम गलती क्या करते हैं कि बहनेवाली चीजों में प्रीति करते हैं और रहनेवाली चीज का उन अभागे विषयों के लिए उपयोग करते हैं। परमात्मा की सेवा-पूजा का उपयोग बहनेवाले विषयों के लिए करते हैं तभी हम धोखा खा जाते हैं, मारे जाते हैं और हमारी जो प्रगति होनी चाहिए वह नहीं हो पाती क्योंकि हम शरीर और मन के चुंगल में फँस जाते हैं। इसीसे हम लोगों के लिए आत्मज्ञान कठिन हो जाता है।

अतः हमें प्रयत्नपूर्वक रहनेवाली चीज में प्रीति बढ़ानी चाहिए, परमात्मा से प्रेम करना चाहिए और बहने वाले संसार का उपयोग परमात्मप्राप्ति के लिए कर लेना चाहिए। फिर आत्मज्ञान पाना, परमात्म-साक्षात्कार करना हमारे लिए आसान हो जायेगा। तनावरहित, दुःख, चिंता, भयरहित अमृतमय जीवन का आरंभ होगा। आपके संग में आनेवाले भी उस दैवी गुणों से लाभान्वित हो जायेंगे। संसारचक्की में पिस मरने के लिए तुम पैदा नहीं हुए हो। राजा जनक की तरह इन दैवी गुणों को बढ़ाकर जीवन्मुक्त होकर जियो।

❀

संकल्प की दृढ़ता

मनुष्य के संकल्प में अथाह सामर्थ्य है । संकल्प के बल से वह सब कुछ करने में समर्थ है । किन्तु संकल्प में दृढ़ता होनी चाहिए और तदनुरूप पुरुषार्थ होना चाहिए । यदि संकल्पों में दृढ़ता है तो आदमी सफल होता है और संकल्पों का ढीलापन मनुष्य को असफल कर देता है ।

रोम देश का बादशाह सीज़र इजिप्त के किनारे अपनी सेना ले जा रहा था । सेनापतियों ने देखा कि शत्रुओं ने खूब तैयारी कर ली है । इजिप्त में भी खूब तैयारियाँ हो चुकी हैं । उनकी सेना हमारे से कई गुना ज्यादा है । वे यह देखकर ढीले-ढाले हो गये, चेहरे मुरझा गये, उत्साह गायब हो गया ।

सीज़र ने देखा कि ये संकल्पबल खो चुके हैं । असफलता का फन दिखाने वाली नागिन-निराशा को यदि दृढ़ता के साथ जला दिया जाये तभी सफलता हासिल हो सकेगी । उसने आदेश दिया :

''सब जहाजों को जला दो ।''

जहाज जल उठे, आग की ज्वालाएँ लपकें लेने लगीं । फिर उसने सैनिकों से कहा :

''देखो, अब जहाज सब जल गये हैं । चाहो तो लड़कर मरो, चाहो तो डूबकर मरो । वापस लौटने का रास्ता नहीं है ।''

सेना में जोश आ गया । वह शत्रुसेना पर टूट पड़ी और इजिप्त की विशाल सेना को हराकर, वहाँ की रानी को वहीं के जहाज में कैद करके लौटे ।

ऐसे ही यदि तुम ईश्वर के रास्ते पर जाने के लिए पीछे के सारे मार्ग बंद कर देते हो तो पहुँच जाते हो । लेकिन जब अनुकूलता है, पंखा चल रहा है, सत्संग में मजा आ रहा है तो बैठे हैं । जरा-सी प्रतिकूलता आयी तो निराशा की नागिन ने तुमको फन मार दिया और तुम्हारा उत्साह ठंडा हो गया, तुम पीछे हट गये तो काम नहीं चलेगा ।

बैठे हैं तेरे दर पर
डेरा डालकर ।
करके उठेंगे
नहीं तो मरके उठेंगे ॥

जिसके जीवन में ऐसी दृढ़ता होती है, वह आत्मज्ञान भी पा लेता है तो स्वर्ग उसके लिए क्या बड़ी चीज है ?

मारवाड़ के ग्रामीण को बम्बई या अहमदाबाद स्वर्ग जैसा लगेगा । बम्बई वाले को अमेरिका में सुख दिखेगा । अमेरिकावाला यदि इन्द्रपुरी पहुँच जाये तो कभी इधर आने का विचार भी नहीं कर सकता, वहाँ इतना सुख होता है लेकिन तत्त्वज्ञान की दृष्टि से देखा जाये तो बाहर के सुखों से ही स्वर्ग सर्जित नहीं होता, वरन् भीतर जितनी ऊँची समझ है और भीतर वाले से जितनी तुम्हारी निकटता है, उतना तुम्हारे पास स्वर्ग होता है और भीतर-वाले को यदि ज्यों-का-त्यों जान लिया तो अनंत-अनंत देश, अनंत-अनंत काल, अनंत-अनंत देवी और देवता भी तुम्हारी कृपादृष्टि के आकाँक्षी बन जायेंगे । ऐसा स्रोत तुम्हारे अंदर छुपा है । फिर सारे भारत का तो क्या सारे विश्व का राज्य भी मिल जाये, फिर भी कुछ नहीं । अरे, स्वर्ग भी उसके लिए कुछ नहीं रह जाता । जिसने भीतर का राज्य पा लिया वह तृप्त हो जाता है ।

तत्त्वज्ञान की दृष्टि से देखा जाये तो बाहर के सुखों से स्वर्ग सर्जित नहीं होता, वरन् भीतर जितनी ऊँची समझ है और भीतर वाले से जितनी तुम्हारी निकटता है, उतना तुम्हारे पास स्वर्ग होता है ।

चाह ने ही मनुष्य को दुःखी कर दिया है । रात्रि को जब तुम सोते हो, गहरी नींद में जब होते हो उस समय कोई चाह नहीं होती । बड़ी शांति, बड़ी तसल्ली और बड़ा आराम होता है ।

सः तृप्तो भवति सः अमृतो भवति ।

किसीको यदि एक बार प्रधानमंत्री बना दिया जाये, फिर वह किसी गाँव का सरपंच होने की इच्छा नहीं करेगा अथवा पटवारी होने के लिए आवेदन-पत्र नहीं भरेगा । ऐसे ही जो विश्वात्मा के साथ एक हो गया, फिर वह स्वर्ग जाने की इच्छा नहीं करेगा । स्वर्ग क्या है ? स्वर्ग है पटवारी बनने के लिए फार्म भरना । जो लोग हाड-माँस के पुतले या पुतली को पाकर सुख लेना चाहते हैं अथवा तो स्वर्ग के कुछ घूँट पीकर सुख लेना चाहते हैं, उनके लिए संत कहते हैं :

जो बिछुड़े हैं पियारे से,
दरबदर भटकते फिरते हैं ।
हमारा यार है हम में,
हमन को बेकरारी क्या ॥

जो उस प्यारे से, प्रभु से, उस आनंदस्वरूप ईश्वर से बिछुड़े हैं वे कभी नर्क में जायेंगे, कभी स्वर्ग में, कभी धन में उलझेंगे कभी निर्धनता में, कभी काशी जायेंगे कभी मक्का । कभी व्रत रखेंगे कभी ऐश करेंगे, कभी बिल्ली बनेंगे तो कभी चूहा । वे बनते और बिगड़ते रहेंगे । हमको कुछ बनना नहीं है । हम सब बन बैठे हैं । बस, अब हद हो गयी । कुछ बनने की इच्छा नहीं है ।

चाह चमारी चूहड़ी, अति नीचन की नीच ।
तू तो पूरन ब्रह्म था जो चाह न होती बीच ॥

चाह ने ही मनुष्य को दुःखी कर दिया है । रात्रि को जब तुम सोते हो, गहरी नींद में जब होते हो उस समय कोई चाह नहीं होती । बड़ी शांति, बड़ी तसल्ली और बड़ा आराम होता है । सुबह जिस क्षण उठते हो, चाहें अभी ऊठी नहीं, केवल शरीर और मन उठा है उस समय शुरुआत की पहली, दूसरी, तीसरी क्षण बड़ी शांति की, बड़े आनंद की होती है । निर्विकल्प समाधि और सुबह के उठने के समय की वे घड़ियाँ एक-दूसरे के करीब होती हैं । योगी को जो समाधि से सुख मिलता है, ज्ञानियों की जो भीतर की अवस्था होती है, वही अवस्था तुम लोगों की सुबह उठने के समय उन प्रथम क्षणों में होती है ।

जितनी-जितनी मनुष्य की वासनाएँ कम होती जाती हैं, उतना-उतना वह प्यारा होता जाता है, भीतर से महान होता जाता है, आनंदित होता जाता है ।

तुम ध्यान करके देखना कि नींद में से जब उठते हैं तब पहली सेकंड के समय की जो शांति है वह शांति कहाँसे आयी ? वह आनंद कहाँसे आया ? वह अमृत कहाँसे आया ? वास्तव में वह अमृत, अमृत-स्वरूप आत्मा का ही है किन्तु तुच्छ इच्छाएँ, वासनाएँ ही उस अमृत को बिखेर देती हैं । जिसमें इच्छाएँ नहीं हैं ऐसा शिशु जरा-सा मुस्कुराता है तो मम्मी-पप्पा और पड़ोसी की थकान उतार देता है । जरा-सा बोलता है, भले फिर तोतला ही बोले तो भी सबको आनंद आता है, वह प्यारा लगता है । उसके प्यारे लगने का कारण क्या है ? उसमें वासनाओं का जोर नहीं होता । जितनी-जितनी मनुष्य की वासनाएँ कम होती जाती हैं, उतना-उतना वह प्यारा होता जाता है, भीतर से महान होता जाता है, आनंदित होता जाता है । बच्चे की वासना सुषुप्त है । ज्ञानी की वासना क्षीण है । जितनी वासना-निवृत्ति उतनी ही परमात्मा में स्थिति । वासनाओं के बढ़ने से मनुष्य अशांत, दुःखी और भीतर से छोटा होता जाता है । अतः आप निर्वासनिक बनो ।

❀ जब इन्द्रियाँ विषयों की ओर जाने के लिये जबरदस्ती करने लगे तब उन्हें लाल आँख दिखाकर चुप कर दो । आत्मानन्द के आस्वाद की इच्छा से आत्मचिन्तन में लगा रहे वही सच्चा धीर है ।

❀ प्रसन्नमुख रहना यह मोतियों का खजाना देने से भी उत्तम है ।

आत्म-महिमा में जागो

एक सम्राट था । उसका इकलौता प्यारा लड़का पागल-सा हो रहा था । कभी वह मुस्कुराए, कभी नाचे-गाए, कभी रोने लग जाए तो कभी जोरों से हँसे या चिल्लाए । कोई कुछ कहे तो सुना अनसुना कर दे और बेपरवाह बना रहे । सम्राट ने उसे खूब समझाया, अपने ढाँचे में ढालने की बहुत कोशिश की लेकिन वह सफल नहीं हो सका । आखिर नाराज होकर सम्राट ने उसे अपने घर से निकाल दिया ।

वह लड़का घूमता-घामता बहुत दूर निकल गया । कहीं दीन-हीन लोगों की बस्ती में पहुँच गया । भूख लगती तो भीख माँगकर खा लेता था और प्यास लगती तो जहाँ-तहाँ पानी पी लेता था । उसका हाल बेहाल हो चुका था । वह अब भूलने लगा था कि मैं सम्राट का बेटा हूँ ।

ऐसा करते करते बारह साल बीत गये । सम्राट बूढ़ा होने लगा । उसको अब अपने इकलौते बेटे की याद सताने लगी । उसने वजीरों को और सिपाहियों को बुलाया । सम्राट ने सबको हुक्म दिया कि राजकुमार जहाँ कहीं भी हो, उसे ढूँढकर ले आओ । आखिर राज्य तो उसको ही देना है । कोई और तो है नहीं, जिसको मैं राज्य दे सकूँ ।

सम्राट ने सबको हुक्म दिया कि राजकुमार जहाँ कहीं भी हो, उसे ढूँढकर ले आओ । आखिर राज्य तो उसको ही देना है । कोई और तो है नहीं, जिसको मैं राज्य दे सकूँ ।

उधर लड़का तो फकीरों और भिखारियों के संग में पूरा भिखारी हो गया था । अपनेको उन लोगों के समान मानने लगा था । एक बार वह घूमता-घामता कहीं रास्ते के किनारे जा बैठा । पुराने कपड़े और फटे हुए जूते पहने थे । गर्मियों के दिन थे । वहाँ बैठकर गीत गाता हुआ भीख माँग रहा था । उसको ढूँढता हुआ एक वजीर उधर जा पहुँचा । उसने देखा कि यह भिखारी जो गीत गा रहा है उसका चेहरा हमारे राजकुमार जैसा है ।

वजीर ने उसे गौर से देखा, उसकी आवाज सुनी और उसे पहचान लिया । वजीर पास गया । उसे प्रणाम किया और कहा :

''राजकुमार ! आपके पिता आपको याद कर रहे हैं । आप अपना राज्य संभालने के लिए चलिये । आप सम्राटपुत्र हैं, आप यह क्या कर रहे हैं ?''

इतना सुनते ही वह चौंककर उठ खड़ा हुआ । उसने अपने भिखारीपन की भावना को झिड़क दिया और वजीर से कहा :

''नौकरों को भेजकर मेरे लिए नये वस्त्र, जूते आदि मँगवाओ और स्नानादि की व्यवस्था करवाओ । मैं तैयार हो जाऊँ ।''

उसे वजीर को हुक्म देता हुआ देखकर आसपास के लोग उसे घूर-घूर कर देखने लगे । वे कहने लगे : ''अरे ! दो मिनट पहले तुम कौन थे और अब क्या हो गये ?''

उसने कहा : ''मैं अपने आपको भूला हुआ था । अब अपने पद की स्मृति आ गई, तो भिखारी से राजकुमार बन गया ।''

वह सम्राटपुत्र गली गली गाता फिरता था और माँगता फिरता था पर भूख मिटाने जितना भी नहीं पा सकता था । अपने सम्राटपने की स्मृतिमात्र से परितृप्ति के सब साधन उपलब्ध हो गये । ऐसे ही आपको जब अपने असली स्वरूप की स्मृति आ जाएगी तब आप भी पूर्ण तृप्त हो

जाएँगे ।

जैसे उस भिखारी को स्मृति आ गई कि मैं सम्राट हूँ। तुम्हें भी केवल स्मृति आ जाए कि मैं सम्राटों का सम्राट साक्षी आत्मा हूँ ।

बारह साल से भीख माँगते-माँगते वह भूल चुका था कि मैं सम्राट का बेटा हूँ। भूलने में तो बारह साल लगे, लेकिन अपने सम्राटपने को याद करने में देर नहीं लगी । वैसे ही तुम सदियों से परमात्मा को, अपने आत्मस्वरूप को भूले हुए हो । परमात्मा को भूलने में तो युग लगे हैं लेकिन स्मृति क्षणमात्र में आ सकती है ।

मैं परिस्थितियों में उलझनेवाला नहीं पर परिस्थितियों का साक्षी हूँ । ऐसी स्मृति आ जाय तो आप प्रकृति पर हुक्म चलायेंगे । आप जैसा चाहेंगे वैसा प्रकृति में होने लगेगा ।

वेदान्त कहता है कि 'सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण इन तीनों गुणों से मिश्रित जो चैतन्य है वह मैं नहीं हूँ पर इन तीनों गुणों को जो प्रकाशित करता है, वह मैं प्रकाश-स्वरूप आत्मा हूँ। जाग्रत को मैंने देखा, स्वप्न को मैंने देखा, सुषुप्ति को मैंने देखा । मैं ये अवस्थाएँ नहीं, पर इन तीनों अवस्थाओं का साक्षी हूँ । मैं परिस्थितियों में उलझनेवाला नहीं पर परिस्थितियों का साक्षी हूँ ।' ऐसी स्मृति आ जाए तो आप प्रकृति पर हुक्म चलाएँगे । आप जैसा चाहेंगे वैसा प्रकृति में होने लगेगा ।

संत जो करें वह नहीं किन्तु जो कहें वह करो

संत न होते जगत में
तो जल मरता संसार....

त्रिविध ताप से जलते हुए इस संसार में केवल संतों के चरण ही परम आश्रयस्थानरूप हैं, जो सबको शांति और आनंद प्रदान कर सकते हैं ।

जिन्होंने अपना सारा जीवन भक्तिरस से सराबोर किया था, ज्ञान और ध्यान से पूर्ण किया था और उससे प्राप्त आत्मानंद के अमृत को लोककल्याण में ही लगा दिया था, ऐसे एक जीवन्मुक्त संत थे । कई लोग दर्शन-सत्संग हेतु उनके पास जाते थे ।

एक बार संत यात्रा पर जानेवाले थे । तब उनके दर्शन हेतु आये हुए लोगों में से एक युवक संत के पास आया । वह उनसे बिनती करने लगा :

''बाबाजी ! कुछ भी हो, इस बार मैं आपके साथ यात्रा में आना चाहता हूँ और कुछ दिन आपके साथ रहना चाहता हूँ। यात्रा का खर्च तो मैं निकाल लूँगा । आप मुझे इस बात के लिए अनुमति दे दीजिये ।''

संत ने पहले तो मना कर दिया । पर जब लड़के ने बार-बार बिनती की, तब वे उसे यात्रा में साथ ले जाने के लिये सहमत हुए । यात्रा के लिए सब रवाना हुए। वह लड़का संत के साथ दस-बारह दिन रहनेवाला था । मगर चार दिन वह संत के साथ रहा और पाँचवें दिन संत को प्रणाम करके बोला :

''आपके साथ यात्रा करने की मेरी इच्छा पूरी हो गई । मुझे दुकान का काम भी संभालना है। अब मैं जाना चाहता हूँ । आज्ञा दीजिए ।''

संत ने कहा : ''तू तो बारह दिन साथ में रहनेवाला था न ?''

घरवाले हैरान हो गये कि हमारा लड़का संत के साथ गया था और उसे यह क्या हो गया ? संध्या-प्राणायाम-जप का नियम भी नहीं करता है !

लड़के का मन उब गया तो उसने घर जाने के लिए बहाना बना लिया।

घर पहुँचा तो उसने पूजा-जप आदि सब छोड़ दिया। घरवाले हैरान हो गये कि हमारा लड़का संत के साथ गया था और उसे यह क्या हो गया ? संध्या-प्राणायाम-जप का नियम भी नहीं करता है !

जब वे संत यात्रा से वापस आये तब युवक के माता-पिता उसको संत के पास ले गये। उन्होंने संत को बताया : ''पहले तो यह संध्या-जप आदि नियमपूर्वक कर लेता था। आपके साथ कुछ दिन यात्रा में होकर आया है, उसके बाद इसने सब नियम छोड़ दिये हैं। नास्तिक हो गया है। वह कहता है कि बाबाजी भी कुछ नहीं करते, मैंने साथ रहकर देख लिया है।''

संतों के व्यवहार को मनमुख लोग समझ नहीं पाते हैं और अपनी अक्ल से संत को नापने जाते हैं तो अपना ही नुकसान कर बैठते हैं।

बाबाजी ने युवक से पूछा :''क्यों तू ऐसा करता है ?''

युवक ने कहा : ''बाबाजी ! आपके साथ रहकर मैंने आपकी सब बातें जान ली हैं। आप लोगों से कहते रहते हो कि 'जप करो, ध्यान करो, प्राणायाम करो, सब कुछ नियमपूर्वक करते रहो।' लेकिन मैं चार दिन आप के साथ रहा। पूरा दिन मैं आपके क्रिया-कलापों को निहारता रहा। आपने न कभी जप किये, न संध्या का नियम किया। रात को ग्यारह बजे आप सोते थे और सुबह सबके साथ उठते थे। मैंने तो पढ़ा था कि जोगी जागते हैं, संसारी ही सोते हैं। पर आप भी संसारी की तरह ही सोते हो। आप भी थके थे और आपने भी पैर दबवाये थे। चार दिन में आप न तो कोई मंदिर में गये, न माला घुमाई। जैसे साधारण यात्री रहते थे, वैसे ही आप भी रहे। केवल आपके और उनके कपड़े में ही फर्क था।''

कई ऐसे महापुरुष हैं जो अपना एकांतवास का सुख छोड़कर साधारण मनुष्यों के बीच उन लोगों की तरह रहते हैं।

तब संत ने कहा : ''शरीर की आवश्यकता तो संत को भी पूरी करनी पड़ती है और संसारी को भी पूरी करनी पड़ती है। संसारी खाते हैं तो संत भी खाते हैं, संसारी सोते हैं तो संत भी सोते हैं। किन्तु संसारी में कर्त्तापन का भाव होता है, जबकि संत कर्त्तृत्व-भोक्तृत्व से परे होते हैं। उनकी प्रत्येक क्रिया सहज में ही होती है।''

शुरूआत में जब तक ईश्वर साक्षात्कार नहीं होता है, तब तक साधक को साधक अवस्था में नियम से प्राणायाम, ध्यान, जप करना चाहिए। जब सिद्ध अवस्था में आ गये, अपने अकर्त्ता अभोक्ता स्वभाव में जग गये तो उनकी तो सहज समाधि है। जिनके लिए जप-ध्यान किया जाता है उन परमेश्वर में महापुरुषों की सहज स्थिति हो जाती है। साधारण व्यक्ति की तरह वे भले जप ध्यान नियम करते न दिखें, जप-ध्यान-नियम के फलस्वरूप उनकी परमात्मा में स्थिति हो गई है।

साधो भाई ! सहज समाधि भली।
गुरुकृपा भई जा दिन से
दिन-दिन अधिक चली ॥

तत्त्वज्ञान-रहित टूटी-फूटी श्रद्धा-वाला उस स्थिति के महापुरुषों को उनके बाहर के क्रिया-कलापों से नापता रहेगा तो उसका साधन-भजन भी टूट-फूट जाएगा।

संतों के व्यवहार को मनमुख लोग समझ नहीं पाते हैं और अपनी अक्ल से संत को नापने जाते हैं तो अपना ही नुकसान कर बैठते हैं।

वे जीवन्मुक्त संत जो सत्य को उप-लब्ध हो गये हैं, उनके लिये जप-ध्यान करते

रहना या समाधि लगाते रहना जरूरी नहीं है । फिर भी कई ऐसे महापुरुष हैं जो अपना एकांतवास का सुख छोड़कर साधारण मनुष्यों के बीच उन लोगों की तरह रहते हैं । लोगों को भगवद्भक्ति और भगवद्प्राप्ति के लिए प्रेरणा मिले ऐसा जीवन जीते हैं । उन करुणासागर, परम उदार, अहैतुकी कृपा वरसानेवाले महापुरुषों के हम ऋणी हैं । उनके ऋण से उऋण होने का उपाय यह है कि उनके आदर्शों को, सत्संग-वचनों को आदरपूर्वक जीवन में उतारें और परमात्मप्राप्ति के लक्ष्य की ओर दृढतापूर्वक आगे बढ़ें ।

पंडित की बात सुनते-सुनते संत हिलने-डुलने लगे । उनके प्राण मानो रुक गये और वे बेहोश होकर गिर पड़े ।

❀

श्रद्धालु तोता

मनुष्य-जीवन में श्रद्धा का होना अत्यंत जरूरी है । श्रीमद् भगवद्गीता में भी कहा गया है कि :

श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्... ।

यदि मनुष्य को ईश्वर एवं ईश्वरप्राप्त महापुरुषों में दृढ श्रद्धा हो जाय, तत्परता एवं संयम आ जाय तो फिर उसके लिए मुक्ति पाना सहज हो जाता है ।

स्वामी रामतीर्थ अपने सत्संग-प्रवचनों में अक्सर यह दृष्टांत दिया करते थे :

शास्त्रार्थ हेतु एकत्रित हुए विद्वानों की सभा में चर्चा हो रही थी कि जीव का कल्याण कैसे हो ? जीवन पूर्ण आनंदित कैसे हो ? जीवन का आखिरी रहस्य कैसे खुले ? जीवन का सत्यस्वरूप क्या है ?

सभागृह में तोते का एक पिंजरा भी टँगा हुआ था । पंडित लोग बारह दिन से शास्त्रार्थ और चर्चा कर रहे थे । उन पंडितों में से एक पंडित कोई संत की बात कर रहा था कि उन संत के पास बैठने से मन शांत होने लगता है, आदमी निर्बन्ध होने लगता है, उनके सामने बैठने से आदमी के जीवन में कुछ अलौकिक सुख-शांति उभरने लगती है । उन संत के बारे में सुनते ही सभा के पंडितों को लक्ष्य करके तोते ने कहा :

''हे सभा के विद्वानों ! तुम उन संत से मेरी मुक्ति का उपाय पूछकर आना । उनसे पूछना कि मैं बन्धन से मुक्त कब होऊँगा ?''

तब एक पंडित ने उसे आश्वासन देते हुए कहा :

''मैं संत से तुम्हारी मुक्ति के बारे में जरूर पूछकर आऊँगा ।''

दूसरे दिन पंडित संत के पास पहुँचा । प्रणाम करने के बाद तोते की बात सुनाई और उसकी मुक्ति का उपाय पूछते हुए कहा :

''महाराज ! तोते ने यह पूछा है कि आप निर्बन्ध हैं तो हमें बन्धन क्यों ? आप कहते हैं कि जो तोते में है, वह मुझमें है और जो मुझमें है वह तोते में है तो आप मुक्त और मैं बन्धन में क्यों ? मैं निर्बन्ध कैसे होऊँ ?''

यदि त्यागी सौ शादियों में जाए तो भोगी और विलासी बन जाएगा और भोगी सौ स्मशान-यात्राओं में जाए तो वह त्यागी बन जाएगा ।

पंडित की बात सुनते-सुनते संत हिलने-डुलने लगे । उनके प्राण मानो रुक गये और वे बेहोश होकर गिर पड़े । पंडित को कोई उत्तर नहीं मिला । उसने देखा कि बाबाजी तो मूर्च्छित हो गये ।

मन जब भोग में गिरता है तो आँखों की पुतली नीचे की ओर ढलती है और जब राम की मस्ती में डूबता है तो आँखों की पुतली ऊपर की ओर उठ जाती है । संत ऐसे ही राम की मस्ती में डूबते हुए गिर पड़े ।

यह देखकर पंडित घबराया कि यह क्या हो गया ? वह श्रद्धालु होता तो हाथ-पैर हिलाता, पानी ले आता, कुछ सेवा करता । लेकिन वह तो पंडित था । पंडितों को सेवा करने के बदले सेवा लेने की आकांक्षा ज्यादा होती है । संत को मूर्च्छित हुआ देखकर पंडित घबराकर वहाँसे चुपचाप चल दिया ।

जब पंडित सभा में पहुँचा तब तोते ने पूछा : ''पंडितजी ! संत से मेरी मुक्ति का उपाय पूछा ?''

तोते की बात सुनते ही पंडित नाराज हो गया और बोला : ''अरे बदतमीझ तोते ! तूने ऐसा कुछ पूछने के लिए कहा कि सुनते ही संत तो मूर्च्छित हो गये और में मुश्किल से अपनी जान बचाकर आया, अन्यथा लोग मेरे गले पड़ जाते कि तूने कुछ कर दिया जिससे संत बेहोश होकर गिर पड़े ।''

तोते ने पंडित की बात ध्यान से सुनी । पंडित की बात सुनते ही तोते के प्राण मानो रुक गये और वह हिलते-डुलते पिंजरे में ही बेहोश होकर गिर पड़ा । संत की बात सुनते-सुनते तोते को गिरा हुआ देखकर पंडित लोग कुछ सोच में पड़ गये कि तोते की बात सुनकर संत बेहोश हो गये और संत की बात सुनकर तोता बेहोश हो गया ।

पंडित विश्वासु था जबकि तोता श्रद्धालु था । संत श्रद्धा की बात जानते थे तो उन्होंने श्रद्धालु को पैगाम दे दिया और वह पैगाम श्रद्धालु तोते ने झेल लिया ।

पंडितों ने देखा कि तोता तो मर गया लगता है । अब क्या किया जाय ? यह तो अपशकुन हो गया । सभा के प्रारंभ में ही मौत !

लेकिन मौत की बात मांगलिक होती है । कोई मृतक को देखे वह बड़े में बड़ा शकुन है वह तुम्हें खबर दे रहा है कि तुम सपने से जागो, तुम्हारा भी यही हाल होनेवाला है । शादी में न जाओ तो हर्ज नहीं पर किसीकी मौत हो गई हो, चाहे दुश्मन की भी मौत हो गई हो, तब वहाँ चले जाना चाहिए । वहाँसे कुछ न कुछ वैराग्य की खबरें मिलेगी । शुभ शकुन तो वही है । यदि त्यागी सौ शादियों में जाय तो भोगी और विलासी बन जाएगा और भोगी सौ स्मशानयात्रा में जाय तो वह त्यागी बन जाएगा ।

पंडितों ने तोते को मरा हुआ जानकर उसको जमीन में गाडने के लिए गड्ढा खुदवाया । पिंजरा खोलकर उन्होंने तोते को बाहर निकाला तो तोता चोंच मारकर, हाथ से छूटकर आकाश में उड़ गया ।

वह बोला : ''हे मूर्ख पंडितों ! तुम बारह दिन से चर्चा कर रहे हो, शास्त्रों और किताबों पर विश्वास कर रहे हो, लेकिन शास्त्रवचन पर तुम्हारी श्रद्धा नहीं है । श्रीकृष्ण के या तत्त्ववेत्ता संत के वचनों पर तुम्हारी श्रद्धा नहीं है । इसलिए तुम्हारा यह शास्त्रार्थ केवल पानी बिलोने के समान है । मक्खन तो उन संत ने खाया है, जिनके इशारे मात्र से मैं भी निर्बन्ध हो गया ।''

ऐसे ही तत्त्ववेत्ता महापुरुषों में श्रद्धा रखकर हम भी उनके संकेत और वचनों के अनुसार अपना जीवन सँवारें तो मुक्त होने में देर नहीं लगेगी ।

संसार की बारिश से हमारे अंदर जो विकार आ जाते हैं वे फालतू घास के समान हैं और जिसके लिए प्रयत्नपूर्वक सत्संग करना पड़ता है फिर खिलता है वह ब्रह्मज्ञान रूपी फूल है ।

तत्त्ववेत्ता महापुरुषों में श्रद्धा रखकर हम उनके संकेत और वचनों के अनुसार अपना जीवन सँवारें तो मुक्त होने में देर नहीं लगेगी ।

सत्शास्त्रों का आदर

नाभाजी महाराज ने 'भक्तमाल' की रचना

की थी। वह 'भक्तमाल' भगवान की भक्ति, भक्तों के जीवनचरित्र, भक्तों की चर्चा और भक्तों की लाज रखने में भगवान कैसे तत्पर रहते हैं इस बात को दर्शाती है।

एक भक्त ने सुन रखा था कि जहाँ 'भक्तमाल' होती है वहाँ भगवान होते हैं, भगवान के प्यारे संत होते हैं। वह भक्त आ गया नाभाजी महाराज के पास और बोला :

''महाराज ! आपकी 'भक्तमाल' मुझे दे दो।''

नाभाजी महाराज बोले :''भैया ! मैं 'भक्तमाल' दे दूँ तो क्या करोगे ?''

भक्त बोला : ''ले जाऊँगा घर।''

नाभाजी महाराज : ''तुम पढ़े-लिखे तो नहीं मालूम होते हो।''

भक्त : ''मैं पढ़ा-लिखा तो नहीं हूँ लेकिन मैंने सुना है कि जहाँ 'भक्तमाल' होती है वहाँ संत होते हैं, भगवान होते हैं। मैं इसका पूजन करूँगा। इसमें संतों की वाणी है न ! इसलिए इसका पूजन करूँगा, इसको भोग धरूँगा, इसकी परिक्रमा करूँगा, इसके आगे हाथ जोड़कर बैठूँगा।''

भक्त की श्रद्धा और विश्वास देखकर नाभाजी महाराज ने कहा : ''भैया ! मुझे दूसरी लिखनी पड़ेगी, यह तू ले जा।''

नाभाजी महाराज ने दूसरी 'भक्तमाल' लिख ली और वह 'भक्तमाल' उसे दे दी। इस भक्त ने 'भक्तमाल' को सुन्दर वस्त्रों से सजाकर रखा। प्रतिदिन उसकी पूजा करे, परिक्रमा करे, उसके आगे हाथ जोड़कर बैठ जाए। इसमें जिन संतों की वाणी थी, जिन संतों के अनुभव थे उन संतों का -कबीरजी, नामदेवजी, ज्ञान-देवजी, तुकारामजी महाराज आदि संतों का स्मरण करते करते वह प्रतिदिन 'भक्तमाल' की पूजा करता था। पढ़ा-लिखा तो था नहीं। जिस ग्रंथ में सत्संग दिया हुआ था उस ग्रंथ का पूजन करता था।

विवेकानंद तो यहाँ तक कहते हैं कि जिस घर में सत्साहित्य नहीं वह घर घर नहीं वरन् स्मशान है, भूतों का बसेरा है।

ग्रंथों में देखा जाये तो कागज और स्याही के सिवाय कोई तीसरी चीज नहीं होती। कागज और स्याही होती है और होते हैं वर्णमाला के अक्षर, जो तुम स्कूल में पढ़े हो, पढ़ाते हो। उन्हीं अक्षरों का मिश्रण होगा, उसमें और क्या होगा ? लेकिन फिर भी वे अक्षर सत्संग के द्वारा दुहराये जाते हैं और उस ढंग से छप जाते हैं तब वह पुस्तक नहीं बचती, वह स्याही और कागज नहीं बचता, वह शास्त्र हो जाता है और हम उसे शिरोधार्य करके, उसकी शोभायात्रा निकालकर अपने को पुण्यात्मा मानते हैं।

जिन ग्रंथों में संतों की वाणी है, संतों का अनुभव है, उन ग्रंथों का आदर होना ही चाहिए। हमारे जीवन में ये सत्शास्त्र अत्यधिक उपयोगी हैं। उनका आदर सहित अध्ययन करके एवं उनके अनुसार आचरण करके हम अपने जीवन को उन्नत कर सकते हैं।

विवेकानंद तो यहाँ तक कहते हैं कि जिस घर में सत्साहित्य नहीं वह घर नहीं वरन् स्मशान है, भूतों का बसेरा है।

अतः अपने घर में तो सत्साहित्य रखें और पढ़ें ही किन्तु औरों को भी सत्साहित्य पढ़ने की प्रेरणा देते रहें। उसमें आपका तो कल्याण होगा ही, औरों के कल्याण में भी आप सहभागी बन जाएँगे।

मुँह से उँगली गिली करके सत्पुरुषों की वाणी का पन्ना नहीं पलटना चाहिए। पवित्रता और आदर से संतों की वाणी को पढ़ने वाला ज्यादा लाभ पाता है। सामान्य पुस्तकों की तरह सत्संग की पुस्तक पढ़कर इधर-उधर नहीं रख देना चाहिए। जिसमें परमात्मा की, महापुरुषों की अनुभूति है, परमात्मशांति देनेवाली है वह तो पुस्तक नहीं, शास्त्र है। उसका जितना अधिक आदर उतना अधिक लाभ।

❀

सत्संगनिधि

संत-भगवंत के साथ आत्मीयता

अगर किसीको अपने शिवत्व को, अपने सत्यस्वरूप को जानने की रुचि है, तत्परता है और उसे ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु मिल जाते हैं तो उसका जीवन धन्य हो जाता है। कोई बच्चा अपने आप अभ्यास करने लगे, उसकी अपेक्षा कोई शिक्षक उसे पढ़ाये तो वह जल्दी सीखकर आगे बढ़ सकता है। ऐसे ही आध्यात्मिक मार्ग में भी अपने आप कुछ करने की बजाय कोई संत का संकेत मिल जाये, मार्गदर्शन मिल जाये, कोई ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु मिल जायें और उनकी छत्रछाया में उनकी आज्ञानुसार रहें, तो ज्यादा आगे बढ़ सकते हैं। जो लाभ बारह महीने में हो सकता है वही लाभ अनुष्ठान करने से चार छः दिन में हो सकता है।

मैंने भी चालीस दिन का अनुष्ठान किया तो मुझे बहुत लाभ हुआ। उसके बाद गुरुजी से मुलाकात हुई तब उन्हें भी ज्यादा मेहनत नहीं करनी पड़ी। गुरुजी की दी हुई 'पंचदशी' को पढ़ा तो बात बन गई। ज्यादा परिश्रम नहीं करना पड़ा और अपना आत्म-साक्षात्कार का लक्ष्य हासिल हो गया।

अनुष्ठान के वक्त एकांतवास हो, अल्प आहार हो, इन्द्रिय-निग्रह हो, वाणी का संयम हो और नीच कर्मों का त्याग हो, इन बातों का ख्याल रखना जरूरी है। ऐसा अनुष्ठान करने से बहुत लाभ होता है।

सुख पाने के लिए हम सुबह से रात तक मजदूरी करते हैं। मजदूरी करके, सामग्री इकट्ठी करके, उसका उपभोग करते हैं और सुखी होना चाहते हैं। किन्तु रहते हैं दुःखी, परेशान, बीमार और लाचार ही। कोल्हू के बैल की तरह वहीं के वहीं रहते हैं। पैदा तो मनुष्य योनि में हुए परन्तु बैल की तरह २० साल, २५ साल, ५० साल, ८० साल तक संसार के कोल्हू को चलाते हैं। प्रकृति के आधीन जन्मते हैं और प्रकृति के आधीन ही मर जाते हैं। अगर जीवन में कोई ऊँचा लक्ष्य हो एवं शास्त्र और संत अनुमोदित पुरुषार्थ हो तो जीवन सफल होता है।

उस लक्ष्य को हासिल करने के लिए जीवन में एकाग्रता का होना बहुत जरूरी है। एकाग्रता बढ़ाने के लिए त्राटक का प्रयोग किया जाये तो उससे मनोनिग्रह, मनो-जय करने में भी सहाय मिलती है। हो सके तो एकांत में रहना चाहिए। नहीं तो घर में ही एक कमरा ऐसा रखना चाहिए जिसमें लौकिक व्यवहार, लौकिक चर्चा और लौकिक चिंतन न हो, केवल भगवान की भक्ति ही हो। ऐसा आसन हो जिससे तुम्हारी विद्युतशक्ति जमीन में खिंची न चली जाती हो। सामने भगवान या गुरु का चित्र रखें और उसके सामने त्राटक करें। त्राटक की जो भिन्न-भिन्न विधियाँ हैं उसमें से किसी एक का प्रयोग करके धारणा करोगे तो तुम्हारा मनोबल विकसित होने लगेगा, शांति आने लगेगी।

मैंने चालीस दिन का अनुष्ठान किया उसके बाद गुरुजी से मुलाकात हुई। गुरुजी की दी हुई 'पंचदशी' को पढ़ा तो बात बन गई। आत्म-साक्षात्कार का लक्ष्य हासिल हो गया।

दीये के सामने त्राटक करोगे तो आकाश में विचरण करने वाले जीव भी दिखेंगे। लेकिन ये सब देखने में कोई सार नहीं है। सार बात तो है परमात्मप्राप्ति। ऐसे और भी कई प्रयोग हैं। किसी भी तरह से थोड़ा इन्द्रियसंयम हो और छः महीने इसका प्रयोग करें तो केवली कुम्भक सिद्ध हो जाता है। फिर तुम कहीं भी रहो, तुम्हारा संकल्प काम करने लगता है।

उडिया बाबा ने भी इसके बारे में कहा है कि जैसी जिसकी योग्यता होती है वैसा उसको लाभ होता है। अपनी शक्ति

को किसी भी नियम के अंतर्गत लेकर साधना करें तो बहुत लाभ होता है। जिसमें दृढ़ता होती है, उसमें कामना हो तो भी दृढ़ता के कारण कामना परमात्म-प्राप्ति की इच्छा में बदल जाती है।

भगवान के चार प्रकार के भक्त होते हैं। सब उदार हैं, चतुर हैं। कोई कुछ पाने के लिए भजता है, कोई कुछ और पाने के लिए भजता है। इसमें चीजें मुख्य हैं और भगवान गौण हैं। लेकिन कभी-कभी भगवान मुख्य हो जाते हैं। जब भगवान मुख्य हो जाते हैं तब उन्हें पाना सहज हो जाता है। इस कलिकाल में तो उन्हें पाने में और भी सुलभता होती है। जो लाभ सतयुग में सात बरस में नहीं होता था, वह त्रेता में सात महीने में होने लगा। वही का वही पुण्य द्वापर में सात दिन में होने लगा। वही स्थिति कलियुग में सात मिनट में आ जाती है। इस समय में एक माला जप करने से इतना पुण्य हो जाता है, जो पहले के समय में सात बरस में होता था। इस सहज और सुलभ स्थिति का फायदा उठाकर उसे पाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

हम सुबह से रात तक मजदूरी करते हैं। सुखी होना चाहते हैं। किन्तु रहते हैं दुःखी, परेशान, बीमार और लाचार ही।

भगवान के साथ हमारा शाश्वत् संबंध है। भगवान से हम जुड़े हुए ही हैं मगर जानते नहीं, मानते नहीं, इसलिए अपनत्व नहीं लगता। अगर कुछ घड़ियाँ भी भीतर डूबोगे और प्रार्थना करोगे कि 'हे प्रभु ! हम तुम्हारे हैं और तुम ही हमारे हो' तो वह तुम्हें तुरन्त अपना लेगा।

सच्ची बात तो यह है कि हमारा यह शरीर भी हमारा नहीं है। यह पंचभूतों से बना है और प्रकृति की चीजों से टिका है। सूर्य के प्रकाश और गरमी से टिका हुआ है। हवाओं से श्वास लेकर चल रहा है। पृथ्वी से अन्न और जल लेकर जी रहा है। माता-पिता के रक्त से जुड़ा हुआ है। इसलिए प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिए कि 'हे प्रभु ! इस शरीर में अगर तेरी चैतन्य सत्ता न होती तो यह शरीर न टिकता। तू मुझे सत्ता देता है तो वही सत्ता शरीर को मिलती है। हे परमात्मा ! प्रकृति में भी तेरी ही सत्ता है, मुझमें भी तेरी ही सत्ता है। हे नाथ ! सब कुछ तेरा है, सब तुझसे है तो मैं भी तुझसे ही हूँ।'

इस प्रकार अपनत्व से प्रार्थना करो। मैं बोलता हूँ वैसे ही तुम बोलो यह जरूरी नहीं है। जैसा तुमको आये और भाये वैसा ही बोलो। लेकिन इस प्रकार की भाषा बोलते हुए तुम परमात्मा को स्नेह करते जाओ। कुछ घड़ियों के लिए डूबते जाओ। फिर तुम्हें आनंद आयेगा, परमात्मा से अपनी एकता का अहसास होने लगेगा। इसे पा लेना आसान हो जाएगा।

इस कलियुग में एक माला जप करने से इतना पुण्य हो जाता है, जो पहले के समय में सात बरस में होता था।

❀

भगवान कब राजी होते हैं ?

किसी आत्मज्ञानी संत के पावन चरणों में बैठने का सौभाग्य जिस किसीको भी मिलता है उसका जीवन धन्य हो जाता है। उसके जीवन की उलझी हुई गुत्थियाँ आसानी से सुलझ जाती हैं।

ऐसे कोई आत्मपद के अनुभवी बड़े दयालु और करुणा के सागर संत थे। हर किसीकी बात सुनते और सबके मन का समाधान हो ऐसे ढंग से उत्तर देते।

एक दिन संत के पास कोई आदमी

आया । उसने पूछा :

''कृपया हमें बताइये कि हमारे भगवान हम पर राजी हैं या नाराज हैं यह हम कैसे जानें ? यदि नाराज हैं तो उन्हें कैसे मनाएँ ?''

संत तो तत्त्ववेत्ता महापुरुष थे । उन्होंने कहा : ''उपाधियुक्त जीव के पास अंतःकरण होता है, भगवान को अंतःकरण नहीं होता । राजी-नाराज जीव होता है । ब्रह्म में यह उपाधि नहीं है ।''

परंतु यह बात उस भक्त की समझ में नहीं आयी । भक्त जो था ! साधक होता तो समझ जाता । उसने संत से पूछा :

''इसका मतलब क्या होता है ? ईश्वर के पास सब कुछ होता है । ईश्वर ही सब कुछ हैं ।''

संत को लगा कि इस बात को वह ऐसे नहीं समझ पाएगा । संत ने उसे सांत्वना देते हुए कहा : ''मैं ईश्वर से पूछकर कल तेरे सवाल का जवाब बताऊँगा ।''

ज्ञानी संत तो स्वयं ईश्वर-स्वरूप थे । ईश्वर से पूछना क्या ? ईश्वर उनसे पृथक् कहाँ थे ! तत्त्ववेत्ता से ईश्वर पृथक् नहीं रहते । तत्त्ववेत्ता अलग तो किसीसे नहीं रहते, लेकिन किसीसे मिले हुए भी नहीं हैं ।

संत ने दूसरे दिन उसको बुलाया और पूछा : ''तेरा सवाल यही है न कि भगवान तुम पर राजी है या नाराज है, वह कैसे जानें ?''

भक्त ने कहा : ''हाँ, महाराज ।''

संत ने गहरी सांस ली और अपने स्वरूप में गोता मारा । फिर उस भक्त से कहा : ''भगवान बोलते हैं कि यदि तेरा अंतःकरण प्रसन्न है, ठीक निर्णय लेता है तो मैं राजी हूँ ऐसा समझना । अगर तेरा अंतःकरण दुःखी है, गलत निर्णय लेता है तो समझना ईश्वर नाराज हैं । तू ईश्वर से दूर है ।''

यह बात बिल्कुल यथार्थ है । आपका अंतःकरण पुलकित रहता है, आगे-पीछे की चिन्ता में डूबा नहीं रहता है तो समझ लेना कि प्रभु उस क्षण राजी हैं । उस समय तुम उनसे जो कहोगे, प्रार्थना करोगे वह सुन लेंगे । अगर तुम्हारा अंतःकरण मुँह चढ़ाकर बैठा है तो समझना कि ईश्वर नाराज हैं । अंतःकरण प्रसन्न तब होता है जब सत्त्वगुण का प्रभाव होता है और सत्त्वगुण का प्रभाव है तो वह ईश्वर के नजदीक है तब ईश्वर राजी होते हैं । जब अंतःकरण इच्छाओं, वासनाओं और मान्यताओं की पकड़ में है तो ईश्वर से दूर है और तब ईश्वर नाराज हैं, ऐसा समझो ।

भगवान बोलते हैं कि यदि तेरा अंतःकरण प्रसन्न है, ठीक निर्णय लेता है तो मैं राजी हूँ ऐसा समझना । अगर तेरा अंतःकरण दुःखी है, गलत निर्णय लेता है तो समझना ईश्वर नाराज हैं ।

उन अंतर्यामी ईश्वर को रिझाना चाहते हो तो इच्छाओं, वासनाओं और मान्यताओं की पकड़ से मुक्त होकर अपने आपमें तृप्ति का अनुभव करना चाहिए । उस परम तृप्ति के अनुभव के लिए सरलतम साधन यह है कि जिसने अपने आपको पा लिया है ऐसे ज्ञानी महापुरुषों में श्रद्धा-भक्ति रखकर उनकी सेवा करें और उनके सत्संग के वचनों को आदर सहित जीवन में उतारें ।

❀

रास्ते चलते जब किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति को देखो, चाहे वह इंग्लैण्ड का सम्राट हो, चाहे अमेरिका का प्रेसिडेण्ट हो, रशिया का सर्वेसर्वा हो चाहे चीन का सरमुखत्यार (डिक्टेटर) हो तब अपने मन में किसी प्रकार की ईर्ष्या या भय का विचार मत आने दो । उनकी शाहानी नजर को अपनी ही नजर समझकर मजा लूटो कि मैं ही वह हूँ । जब आप ऐसा अनुभव करने की चेष्टा करेंगे तब आप का अनुभव सिद्ध कर देगा कि सब एक ही हैं ।

'ऋषि प्रसाद' के रसोईया आशाराम बापू

ऋतुओं का राजा है वसंत वैसे ही धार्मिक सामयिकों का राजा है 'ऋषि प्रसाद' ।

षि......

प्रसाद को भोजन मानना अपराध है, गुरु को मनुष्य मानना अपराध है और स्वयं को शरीर मानना भी अपराध है ।

साधक के लिए तो ये अनिवार्य होते हैं : वाणी का संयम, संकल्प-विकल्पों का संयम और ब्रह्मचर्य का पालन । इससे जीवनशक्ति का विकास होता है ।

दररोज (हररोज) एक घंटे 'ॐ राम... ॐ राम..... का जाप करने से स्थूल शरीर की नाड़ियों में मंत्रजाप के प्रभाव से रोगनाशक सामर्थ्य आता है । सभी रोगों में लाभ होता है और मन पवित्र बनता है ।

केवल नारायण... नारायण... नारायण... नारायण... इस शब्द का चार बार उच्चारण करके तुम कोई भी कार्य आरंभ करोगे तो अवश्य सफल होगे और सफलता का अहंकार नहीं आयेगा । असफल होगे तो भी विषाद नहीं होगा ।

रजो-तमोगुण की प्रधानता से ही सब पाप पनपते हैं । जैसे दँराती, चाकू, छूरी, तलवार आदि अलग-अलग होते हुए भी लोहा एक ही है, वैसे ही पापों के भिन्न नाम होते हुए भी पाप का मूल रजो-तमोगुण है । इसलिए सावधान रहना ।

सो (सौ) काम छोड़कर भोजन कर लेना, हजार काम छोड़कर स्नान कर लेना, लाख काम छोड़कर दान-पुण्य कर लेना और करोड़ काम छोड़कर हरि का ध्यान-भजन कर लेना चाहिए ।

ईश्वर के सिवाय कहीं भी मन लगाया तो अन्त में रोना ही पड़ेगा । अतः सावधान ! समय मत गँवाओ ।

यार ! मनुष्य-जन्म पाकर भी दुःखी और शोकातुर रहना यह खूब शर्म की बात है । शोक और चिंता में वे लोग डूबें जिनके माँ-बाप मर गये हों । तुम्हारे माँ-बाप तुम्हारे परमात्मा सदा तुम्हारे साथ हैं, फिर शोक और चिन्ता क्यों ?

आत्मनिष्ठा में जगे हुए महापुरुषों के सत्संग और सत्साहित्य के द्वारा जीवन को भक्ति और वेदांत से पुष्ट और पुलकित करो । जागो... उठो.... अपने भीतर सोये हुए सर्वोत्तम आत्मबल को जगाओ ।

शास्त्र और गुरु के वचनों को आदरपूर्वक नहीं सुनेंगे तो ठोकर खायेंगे, फिर रोना तक नहीं आयेगा । जब तक गुरु की उपस्थिति है, शास्त्र और गुरु के वचनों को सुनने-समझने की योग्यता है तब तक समझ लिया तो समझ लिया नहीं तो तोबा.....तोबा...... है ।

रात्रि में निद्राधीन होते समय परम सुखस्वरूप परमात्मा के पास विश्रांति करने की भावना के साथ निद्राधीन हो जाओ । परमात्मा निर्बन्ध हैं, निश्चिंत हैं और आनंदस्वरूप हैं । अतः हम भी आनंद, निर्भयता और निश्चिंतता के भाव के साथ निद्राधीन हो जाएँ तो हमारी निश्चिंतता और प्रसन्नता बढ़ेगी ।

मन ही मनुष्य के बंधन और मुक्ति का कारण है । शुभ संकल्प और पवित्र कार्य करने से मन शुद्ध बनता है, निर्मल होता है और मोक्ष के मार्ग पर ले जाता है । वही मन अशुभ संकल्प और पाप पूर्ण आचरण से अशुद्ध बनता है और संसार के बँधन में कसकर बाँध देता है ।

बालकों ! जरा तो विचार करो ! ये अनमोल मनुष्य

जन्म बारंबार प्राप्त नहीं होता । उसे पाना सहज नहीं है। अभी मिला है तो उसे दारू, तम्बाकू जैसे दुर्व्यसनों से दूषित क्यों करते हो ? बोतल की शराब दस पीढ़ी तक बरबादी कर सकती है तो रामनाम की प्यालियाँ इक्कीस पीढ़ियों को आबाद कर दें, यह स्वाभाविक ही है।

जाम पर जाम पीने से क्या फायदा,
रात बीती सुबह को उतर जाएगी ।
'आशाराम' से तू हरिरस की प्यालियाँ पी ले,
तेरी सारी जिंदगी सुधर जायेगी ॥

पुरुष वर्ग में जो स्त्रियाँ स्वच्छंद होकर अपना घर छोड़कर विचरण करती हैं, वे दूसरे कार्यों में भले कितनी ही प्रसिद्ध हो जायें किन्तु यदि वे अंतर्मुख होकर अपने शील और चारित्र्य पर दृष्टिपात करें तो बहुत-सी स्त्रियों को अनुभव होगा कि विकारों ने उनके मानस को मथ डाला है । पतन से बचने वाली कोई बिरला स्त्री ही होगी ।

- संकलनकर्त्ता
सुरेशभाई वी. कपुरिया
जशापुर (गीर), जि. जूनागढ़ (गुज.)

गुरुभक्तियोग

गुरुभक्तियोग के अंश

१. गुरुभक्तियोग माना सद्गुरु को सम्पूर्ण आत्मसमर्पण करना ।

२. गुरुभक्तियोग के आठ महत्त्वपूर्ण अंग इस प्रकार हैं :

(अ) गुरुभक्तियोग के अभ्यास के लिये सच्चे हृदय की स्थिर महेच्छा । (ब) सद्गुरु के विचार, वाणी और कार्यों में सम्पूर्ण श्रद्धा । (क) गुरु के नाम का उच्चारण और गुरु को नम्रतापूर्वक साष्टांग प्रणाम । (ड) सम्पूर्ण आज्ञाकारिता के साथ गुरु के आदेशों का पालन । (प) बिना फलप्राप्ति की अपेक्षा सद्गुरु की सेवा । (फ) भक्तिभावपूर्वक हररोज सद्गुरु के चरणकमलों की पूजा । (भ) सद्गुरु के दैवी कार्य के लिए आत्म-समर्पण... तन, मन, धन समर्पण । (म) गुरु की कल्याणकारी कृपा प्राप्त करने के लिए एवं उनका पवित्र उपदेश सुनकर उसका आचरण करने के लिए सद्गुरु के पवित्र चरणों का ध्यान ।

३. गुरुभक्तियोग योग का एक स्वतंत्र प्रकार है ।

४. मुमुक्षु जब तक गुरुभक्तियोग का अभ्यास नहीं करता तब तक ईश्वर के साथ एकरूप होने के लिए आध्यात्मिक मार्ग में प्रवेश करना उसके लिए सम्भव नहीं है ।

५. जो व्यक्ति गुरुभक्तियोग की फिलासफी समझता है वही गुरु को बिनशरती आत्म-समर्पण कर सकता है ।

६. जीवन के परम ध्येय अर्थात् आत्म-साक्षात्कार की प्राप्ति गुरुभक्तियोग के अभ्यास द्वारा ही हो सकती है ।

७. गुरुभक्ति का योग सच्चा एवं सुरक्षित योग है, जिसका अभ्यास करने में किसी भी प्रकार का भय नहीं है ।

८. आज्ञाकारी बनकर गुरु के आदेशों का पालन करना, उनके उपदेशों को जीवन में उतारना, यही गुरुभक्तियोग का सार है ।

गुरुभक्तियोग का हेतु

९. मनुष्य को पदार्थ एवं प्रकृति के बन्धनों से मुक्ति दिलाना और गुरु को सम्पूर्ण आत्मसमर्पण करके 'स्व' के अबाध्य स्वतंत्र स्वभाव का भान कराना यह गुरु-भक्तियोग का हेतु है ।

१०. जो व्यक्ति गुरुभक्तियोग का अभ्यास करता है वह बिना किसी विपत्ति से अहंभाव को निर्मूल कर सकता है, संसार के मलिन जल को बहुत सरलता से पार कर जाता है और अमरत्व एवं शाश्वत सुख प्राप्त करता है ।

११. गुरुभक्तियोग मन को शान्त और निश्चल बनानेवाला है ।

(क्रमशः)

वीर बालक पृथ्वीसिंह

शिकारी जंगल से एक नया शेर पकड़कर लाये थे। 'वन का राजा' अपनेको बन्धन में पाकर बुरी तरह दहाड़ रहा था। बादशाह औरंगजेब ने उसे देखा और कहने लगे : ''शायद इससे ज्यादा खूँखार शेर इस जमीन पर दूसरा न हो।''

सभी दरबारियों ने उनकी हाँ-में-हाँ मिलायी किंतु वहाँ उपस्थित व्यक्तियों में एक ऐसा भी था, जिसके मुखमण्डल की आकृति से यह स्पष्ट प्रकट हो रहा था कि उसे बादशाह का यह कथन स्वीकार नहीं है।

औरंगजेब ने उसकी ओर देखा और वह इसे समझ गये। इन्होंने कहा : ''यशवन्तसिंह !''

''हाँ, जहाँपनाह !''

''क्या तुम्हें मेरी राय से इत्तफाक नहीं है ?''

''नहीं, जहाँपनाह !''

''तो क्या इस शेर से भी ज्यादा ताकतवाला कोई शेर है तुम्हारी निगाह में ?''

''हाँ, जहाँपनाह !''

''किसके पास है वह शेर ?''

'मेरे पास, जहाँपनाह !'

''तुम्हारे पास ?'' औरंगजेब ने कहा। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

''हाँ, जहाँपनाह ! मेरे पास।'' यशवन्तसिंह ने कहा। ''यदि आपको विश्वास न हो तो मेरे शेर से अपने शेर को लड़ाकर देख लीजिये।''

''और अगर तुम्हारा शेर हार जाय तो ?'' औरंगजेब ने पूछा।

''तो मेरा सिर भरी सभा में कटवा लीजिये, जहाँपनाह ! इससे अधिक और मैं कह भी क्या सकता हूँ।'' यशवन्तसिंह ने उत्तर दिया।

''मुझे तुम्हारी चुनौती मंजूर है।'' औरंगजेब ने कहा और वह दरबार से उठ गया।

अगले ही दिन किले के सामनेवाले मैदान में औरंगजेब और यशवन्तसिंह के शेरों की लड़ाई का आयोजन किया गया। मैदान की चहारदीवारी ऊँचे कँटीले तारों से बनवायी गयी थी। उत्तर की ओर सम्राट स्वयं अपने सिंहासन पर आकर बैठ गये, उनसे दाहिनी ओर उनके दरबारी थे और बायीं ओर कुछ राजपूत सरदार। सामने पूर्व से पश्चिम की ओर चन्द्राकार में अपार जनता बैठायी गयी। मैदान में एक बहु बड़ा लोहे का सींकचोंवाला जाल लगाया गया था और उसीमें बादशाह का बबर शेर दहाड़ रहा था।

सभी उपस्थित व्यक्ति यशवन्तसिंह और उनके सिंह की प्रतीक्षा में थे। कुछ ही समय पश्चात् सबने देखा कि यशवन्तसिंह अपने दशवर्षीय पुत्र पृथ्वीसिंह के साथ बड़ी तीव्रता से पैर बढ़ाते हुए चले आ रहे हैं किंतु उनके साथ कोई भी सिंह किसीको दिखलायी न पड़ा।

यशवन्तसिंह ने आगे बढ़कर बादशाह को सिर झुकाया।

''कहाँ है तुम्हारा शेर, यशवन्तसिंह !'' औरंगजेब ने कहा। ''तुम इतनी देर से आये और फिर भी खाली हाथ !''

''मैं खाली हाथ नहीं आया हूँ, जहाँपनाह ! मेरा शेर मेरे साथ है।'' यशवन्तसिंह ने कहा। ''आप युद्ध आरम्भ होने का संकेत कीजिये।''

''तुम्हें अपनी शर्त तो याद है न ?'' औरंगजेब ने पूछा।

''हाँ, जहाँपनाह ! खूब याद है और मैं उसे फिर भी दोहराये देता हूँ कि मेरा शेर जहाँपनाह के शेर को न पछाड़ सके तो मेरा सिर इसी सभा में काट लिया जाय, मुझे कोई आपत्ति न होगी।''

''तो उपस्थित करो अपना शेर।'' कहते-कहते औरंगजेब ने शिकारी की ओर संकेत किया और उसने आगे बढ़कर उस बबर शेर का पिंजरा खोल दिया। शेर ने अँगड़ाई ली और दहाड़कर खड़ा हो गया। इसकी उस दहाड़ को सुनकर सारी जनता सहम उठी। कँटीले तारों की चहारदीवारी के पास बैठे हुए व्यक्ति पीछे को हटने लगे।

शेर ने पिंजरे के बाहर सिर निकाला ही था कि यशवन्तसिंह ने अपने कुमार की पीठ थपथपायी :

''देखते क्या हो, मेरे शेर ! बढ़ जाओ आगे। देखना,

प्रतिद्वन्द्वी बचकर जाने न पाये ।'

अब जनता की समझ में आया और बादशाह की भी कि अपने शेर से यशवन्तसिंह का अभिप्राय अपने पुत्र से था । किंतु यह समझने के पश्चात् भी किसीको यह विश्वास नहीं हो रहा था कि यह दस-बारह वर्ष का बच्चा इस बबर शेर को कैसे पछाड़ देगा ।

पृथ्वीसिंह गम्भीरतापूर्वक आगे बढ़ा । सारा जनसमूह आँखें फाड़कर उसकी ओर देख रहा था ।

शेर बाहर निकला और पृथ्वीसिंह ने उससे आँखें मिलायीं । शेर एक क्षण के लिए पीछे हट गया, मानो वह उस सुकुमार बालक की छबि देख रहा हो ।

शिकारियों ने शेर को उकसाया तो वह दहाड़ मारकर आगे बढ़ा । पृथ्वीसिंह ने पैंतरा बदला और अपनी तलवार म्यान से खींच ली ।

''यह क्या करता है, पृथ्वीसिंह ! निहत्थे सिंह पर हथियार से वार ! यह तो धर्मयुद्ध नहीं हुआ, बेटा !'' यशवन्तसिंह ने चिल्लाकर कहा ।

पृथ्वीसिंह ने तलवार फेंक दी और फिर पैंतरा बदलकर शेर पर झपटा । देखते-ही-देखते उसने दोनों हाथों से शेर का जबड़ा पकड़ लिया और उसे फाड़ते-फाड़ते शेर को ही दो भागों में चीर डाला ।

सारा जनसमूह पृथ्वीसिंह की जय-जयकार से गूँज उठा । यशवन्तसिंह की छाती गर्व से फूल गयी । उन्होंने आगे बढ़कर अपने शेर को गोदी में उठा लिया और उसका मुँह चूम लिया । और फिर उसी मुद्रा में पृथ्वीसिंह को गोदी में उठाये-उठाये ही उन्होंने पीठ फेरी तो देखा कि बादशाह सिंहासन से उठ चुके हैं और किले की ओर जा रहे हैं ।

गहन अन्धकार से प्रभु ! परम प्रकाश की ओर ले चल...

इस संसार में सज्जनों, सत्पुरुषों और संतों को जितना सहन करना पड़ा है उतना दुष्टों को नहीं । ऐसा मालूम होता है कि इस संसार ने सत्य और सत्त्व को संघर्ष में लाने का ठेका ले रखा है । यदि ऐसा न होता तो गाँधी को गोलियाँ नहीं खानी पड़ती, ईसामसीह को शूली पर न लटकना पड़ता, दयानन्द को जहर न दिया जाता और लिंकन व केनेड़ी की हत्या न होती ।

इस संसार का कोई विचित्र रवैया है, रिवाज प्रतीत होता है कि इसका अज्ञान-अंधकार मिटाने के लिए जो अपने आपको जलाकर प्रकाश देता है, संसार की आँधियाँ उस प्रकाश को बुझाने के लिए दौड़ पड़ती हैं । टीका, टिप्पणी, निन्दा, गलत चर्चाएँ और अन्यायी व्यवहार की आँधी चारों ओर से उस पर टूट पड़ती हैं ।

सत्पुरुषों की स्वस्थता ऐसी विलक्षण होती है कि इन सभी बवंडरों (चक्रवातों) का प्रभाव उन पर नहीं पड़ता । जिस प्रकार सच्चे सोने को किसी आग की भट्ठी का डर नहीं होता उसी प्रकार संतजन भी संसार के ऐसे कुव्यवहार से नहीं डरते । लेकिन उन संतों के प्रशंसकों, स्वजनों, मित्रों, भक्तों और सेवकों को इन अधम व्यवहारों से बहुत दुःख होता है ।

महापुरुषों के मन में कदाचित् कोई भी प्रतिकार पैदा हो तो यही कि : ''हे दुनिया ! तेरी भलाई के लिए हम यहाँ आए थे, किन्तु तू मुझे पहचान न सकी । हमें यहाँ आने का कोई दूसरा प्रयोजन नहीं था । हमने तेरे कल्याण के लिए अपनी देह धारण की और तूने ही मेरी अवहेलना की, अनादर किया ? मुझे तुझसे कुछ लेना नहीं था । हम तो तुझे प्रेम से अमृत देने के लिए बैठे थे । तूने उसका अनादर किया और हमारे सामने विष वमन करना शुरू किया । खैर, तेरा रास्ता तुझे मुबारक और हम अपने आप में मस्त ।

अन्धकार, जिसका वास्तव में कोई अस्तित्व नहीं, अकारण प्रकाश की निन्दा करता है । मनुष्य की प्रकृति में यह अन्धकार अज्ञान और जड़ता के रूप में स्थित है । यह जब अपना जौहर दिखाता है तब हैरानी-परेशानी पैदा कर देता है । उसे नष्ट करना और परम दिव्यता के प्रकाश की आराधना करना इसीका नाम ही साधना है । सभी संत विभिन्न रूप में हमें इस साधना के मार्ग की ओर ले जाते हैं । घाटी का उबड़खाबड़ रास्ता छोड़कर हम परम दिव्यता के प्रकाशित पथ पर अग्रसर बनें ऐसी प्रार्थना... ।

(क्रमशः)

शरीर-स्वास्थ्य

आरोग्यता का मूल प्राकृत जठराग्नि

मात्र आयुर्वेद में ही नहीं, किन्तु वेद, पुराण एवं दूसरे धार्मिक ग्रंथों में भी जठराग्नि का महत्त्व बताया गया है। जैसे कि जठराग्नि भगवान है, साक्षात् वैश्वानर है। अतः दिनचर्या, ऋतुचर्या रूपी जठराग्नि की पूजा का खूब महत्त्व है।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥

(भगवद्गीता : १५.१४)

भगवान श्रीकृष्ण भी कहते हैं कि जो जठराग्नि है, वैश्वानर है, वही मैं हूँ।

आयुर्वर्णो बलं स्वास्थ्यमुत्साहोपचयो प्रभा।
ओजस्तेजोऽग्नयः प्राणश्चोक्ता देहाग्नि हेतुकाः ॥

(चरकसंहिता, चिकित्सास्थान, अध्याय : १५)

दीर्घ आयु, प्राकृतवर्ण, बल, आरोग्यता, उत्साह, उपचय, (शरीर का योग्य विकास, पुष्टि), प्रभा, ओज, तेज, शरीर की उपमा, प्राणों का आधार जठराग्नि है।

जठराग्नि के शान्त होने पर तुरंत ही मृत्यु होती है। जठराग्नि के ठीक होने से दीर्घ स्वस्थ जीवन मिलता है। जठराग्नि बराबर न हो तो रोगों की उत्पत्ति होती है। अतः जठराग्नि शरीर का मूल है।

८० % रोगों का मूल कारण मंदाग्नि (विकृत अग्नि) है। चाहे जितना भी बिगड़ा हुआ केस हो, रोग गंभीर हो किन्तु जठराग्नि के प्राकृत होने तथा श्वासोच्छ्वास के तालमेल के नियमित होने एवं योग्य आहार लेने से फायदा निश्चित होता है।

'जठराग्नि को संभालो... जठराग्नि को सुधारो...' यह आयुर्वेद का महावाक्य है।

जठराग्नि को सुधारने के उपाय

१. नियमित भोजन करें। संभव हो तो दोपहर में १२ से १ तथा रात्रि में ७ से ८ बजे के बीच भोजन कर लें। सुबह यदि जरूरी लगे तो हल्का नास्ता करें।

२. भोजन से पूर्व पैर गीले करें। भोजन करने के तुरंत बाद पानी न पियें। भोजन के ४५ मिनट बाद पानी पियें। भोजन के बाद बाँयीं करवट लेटें।

३. भोजन करने के अलावा के समय में कुछ न खायें। जठराग्नि कचरापेटी नहीं है कि पेट में बार-बार भोजन डाला जाये। चाय, बीड़ी, कॉफी अथवा अन्य व्यसन न करें।

४. पानी ठंडा न पियें। ठंडा भोजन, आईसक्रीम जैसी वस्तुएँ तथा रात्रि में दही, छाछ एवं कफ बढ़ायें ऐसा भारी आहार न लें।

५. एकादशी एवं पूर्णिमा के दिन उपवास करें या एक बार खायें अथवा फलाहार करें।

श्वासोच्छ्वास का नियमित तालमेल शरीर की महत्त्वपूर्ण क्रियाओं, स्वास्थ्य, आनंद और सफलता के साथ संबंध रखता है। इन्द्रियों का स्वामी मन है। मन पर नियंत्रण के लिए प्राकृत जठराग्नि एवं नियमित श्वासोच्छ्वास आवश्यक है।

विधिवत और सही रूप से आसन-प्राणायाम करने से एवं भगवद्गीता, वेद आदि के श्लोकों के पठन से, भजन, कीर्तन एवं मंत्र के उच्चारण से श्वासोच्छ्वास तालबद्ध होता है। रामायण एवं आसारामायण के व्यवस्थित उच्चारण से भी श्वासोच्छ्वास नियमित होता है।

अश्वगंधा

पीताऽश्वगन्धा पयसाऽर्धमासं
घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा।
कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते
बालस्य सस्यस्य यथा सुवृष्टिः ॥

(अष्टांगहृदय उत्तरस्थान : ३९.१५७)

जैसे अच्छी बारिश ऊगते हुए अनाज को पोषण देकर बड़ा करती है, वैसे ही आधे महीने तक घी, तेल अथवा गरम पानी के साथ ली हुई अश्वगंधा (आसोद) दुबले तन को हृष्टपुष्ट बनाती है ।

अश्वगंधा चूर्ण किराने की दुकान में मिलता है । जो बहुत पुराना न हो, नया हो उसे ही पसंद करना चाहिए । शीतकाल में अश्वगंधा विशेष हितकर है । सुबह खाली पेट घी, तेल अथवा गरम पानी के साथ अश्वगंधा चूर्ण ३ से ६ ग्राम लें । उसके बाद दोपहर को जब भूख लगे तब भोजन से पूर्व सैंधानमक और अदरक लेकर, दूध-भात अथवा दूध में बनाई हुई चावल की राब ली जाये तो सचमुच अश्वगंधा बलप्रद और वजन बढ़ाने वाली बनती है ।

बालकों के विकास के लिए अश्वगंधा विशेष लाभ-दायक है । अनिद्रा, क्षय तथा बालकों के बालशोष में भी वह लाभप्रद है ।

भोजन के बाद तुरन्त पानी न पियें

भुक्तस्यादौ जलं पीतं कार्श्यमन्दाग्नि दोषकृतम् ।
मध्येऽग्नि दीपनं श्रेष्ठमन्ते स्थौल्यं कफप्रदम् ॥

(भावप्रकाश पूर्वखण्ड)

भोजन करने से पूर्व जल पीने से शरीर और जठराग्नि अत्यंत कमजोर हो जाती है । भोजन के बीच में जरूरत के अनुसार पानी पीना श्रेष्ठ है । इससे अग्निदीपन होता है ।

भोजन करने के बाद पानी पीने से विकृत रूप से कफोत्पत्ति होती है जो सर्दी, खांसी, अतिसार, मरोड़, पेट के रोगों जैसे अनेक रोगों का कारण बनती है । भोजन करने के पश्चात् जल पीने से शरीर और बुद्धि में पुष्टता नहीं, वरन् स्थूलता आती है । भोजन से पहले और भोजन के बाद पानी पीना अत्यंत नुकसानकारक है और भगवान वैश्वानर का अपराध है । ७० % से अधिक लोगों को खाने के बाद पानी पीने की आदत है जो अत्यंत हानिकारक है ।

भोजन करने के पश्चात् ५० से १०० कदम चलकर, १० से १५ मिनट बाँयीं करवट लेट जायें जिससे सूर्य स्वर चले । भोजन के ४५ मिनट बाद चंद्रस्वर चालू करके थोड़ा पानी पियें ।

काले तिल का प्रयोग

दिने दिने कृष्णतिलप्रकुञ्च्यं
समश्नतां शीतजलानुपानम् ।
पोषः शरीरस्य भवत्यनल्पो
दृढीभवन्त्यामरणाय दन्ताः ॥

(अष्टांगहृदय : ३.३९)

जो व्यक्ति रोज चार तोला काली तिल चबाकर खाता है और फिर ऊपर ठण्डा पानी पीता है उसके शरीर का खूब पोषण होता है, शरीर अत्यंत हृष्टपुष्ट होता है और उसके दांत मृत्यु तक मजबूत रहते हैं ।

श्री महर्षि वागभट्ट नामक ऋषि ने उनके 'अष्टांगहृदय' नामक ग्रंथ में अलग-अलग रसायन प्रयोग दिये हैं । उसमें उपरोक्त श्लोक में तिल का रसायन प्रयोग दिया है । इस रसायन प्रयोग से दीर्घ आयु, स्मरणशक्ति, मेधा (बुद्धि) में प्रकाश, आरोग्यता, तरुणवय (शरीर की युवावस्था का टिके रहना), तेज और शरीर पुष्ट होकर ओज की वृद्धि होती है ।

विशेष रूप से तिल वात-कफ प्रकृति वालों के लिए हितकर है । उसमें भी वात प्रकृतिवालों के लिए विशेष लाभदायक है । वैसे ही तिल बालों के लिए लाभप्रद तथा बलदायक है । अग्नि (पाचनशक्ति)को व्यवस्थित करने वाली है ।

सामान्य रूप से १० ग्राम से तिल खाने की शुरुआत करके, धीरे-धीरे बढ़ाते-बढ़ाते ४० ग्राम तक उसकी मात्रा बढ़ानी चाहिए । यह तिल सुबह ही खानी और उसके ऊपर मटके का ठंडा पानी पीना चाहिए । उसके खाने के बाद तीन घण्टे तक अन्य कुछ भी आहार नहीं लेना चाहिए । जो लोग चिन्ता, शोक, भय, क्रोध, काम, मोह आदि से पीड़ित हैं उन्हें यह रसायन प्रयोग लाभ नहीं देता । अतः यदि हम सत्संग आदि का रोज लाभ लेते हों और साथ में यह रसायन प्रयोग करें तो वह रसायन प्रयोग हमें सम्पूर्ण लाभ देता है ।

संसार-सागर के तारक ब्रह्म पू. बापू ने हमें साबरमती में डूबने से बचाया......

दिनांक : १५-९-९३ को मैं अपने २३ वर्षीय पुत्र मनीष के साथ पुरुषोत्तम मास की पूर्णाहुति के निमित्त से अमावस के दिन सुबह साबरमती नदी में स्नान करने गयी थी। शाहीबाग सर्किट क्षेत्र में गायत्री मंदिर के पास से नीचे उतरकर हम लोग भीमनाथ के किनारे से नदी के प्रवाह तक पहुँचे। सुबह के करीब सात बजे थे। घुटने तक का पानी था, वहाँ हम स्नान करने के लिए उतरे। मनीष कहने लगा : ''मुझे नहीं नहाना। मुझे तैरना नहीं आता है।''

मैंने कहा : ''यहाँ घुटने तक का ही पानी है, नहा ले। कुछ भी घबराने जैसा नहीं है।''

वह मान गया। हमने एक-दो डुबकियाँ मारीं। सूर्य को अर्घ्य दिया। इतने में २०-२२ वर्ष की दो युवतियाँ स्नान करने आईं। उथला पानी देखकर अधिक पानी में स्नान करने के लिए आगे बढ़ीं। थोड़ी ही आगे बढ़ीं इतने में वे दोनों चिल्लाने लगीं :

''बचाओ... बचाओ....''

हमें लगा कि ये दोनों ऐसे ही मजाक करती होंगी। किन्तु फिर ख्याल आया कि वे दोनों गहरे पानी में पहुँच गयी हैं और सचमुच डूब रही हैं। खूब घबराकर बचाव के लिए पानी में वे हाथ-पैर चला रही थीं।

आसपास बहुत-से लोग खड़े थे किन्तु कोई भी गहरे पानी में जाने की हिंमत नहीं कर रहा था। मेरे पास स्नान कर रहा मनीष तुरंत खड़ा होकर गहरे पानी में जाने लगा किन्तु मैंने उसे बाँहों से पकड़ लिया और कहा : ''तुझे तैरना नहीं आता है इसलिए मत जा।'' किन्तु मनीष मेरी बात सुनने को तैयार ही न था।

''माँ ! देखो..... वे डूब रही हैं....'' ऐसा कहकर एक झटका मारकर मनीष मेरी पकड़ में से छूट कर भागा और वहाँ पहुँच गया जहाँ दोनों लड़कियाँ डूब रही थीं। जैसे ही मनीष उन दोनों के निकट पहुँचा दोनों पागलों की तरह मनीष से लिपट पड़ीं। एक मनीष की गर्दन पर चढ़ बैठी और दूसरी ने मनीष के दोनों हाथ पकड़ लिये। अब मनीष भी लाचार हो गया और तीनों लोग पानी में गोते खाने लगे। लड़कियाँ इतनी घबरा गई थीं कि कैसे भी करके मनीष को छोड़ने को तैयार ही न हों। डुबकियाँ खाते खाते दोनों का सिर पानी से बाहर आये किन्तु मनीष पानी में ही डूबा रहे। यह देखकर मैं घबरा गई। मुझे लगा कि मेरा बेटा आज गया ! डूबे हुए मनीष को मैं कहने लगी :

''मनीष ! तू 'बापू... बापू...' कर। घबराना मत। बापू तुझे बचायेंगे।''

''माँ ! देखो.. वे डूब रही हैं...'' ऐसा कहकर एक झटका मारकर मनीष मेरी पकड़ में से छूटकर भागा और वहाँ पहुँच गया जहाँ दोनों लड़कियाँ डूब रही थीं।

किनारे खड़े लोग हक्के-बक्के होकर तमाशा देख रहे थे परन्तु कोई आगे नहीं आ रहा था। अंत में एक व्यक्ति को हिंमत आयी और वह पानी में उतरा। तीनों के पास जाकर सहारा देने का यत्न किया किन्तु खुद फँस जायगा इस डर से उन्हें पानी में ही छोड़कर खुद बाहर आ गया।

अब मुझसे न रहा गया। मुझे तैरना न आते हुए भी मैं 'मनीष.....मनीष.....' करते हुए गहरे पानी में दौड़ गयी। थोड़े आगे बढ़ने पर मैं भी डूबने लगी। निस्सहाय होकर पानी में

गोते खाने लगी। मनीष और लड़कियों को बचाना तो दूर रहा, मैं भी संकट में पड़ गयी। वापस लौट सकूँ ऐसा न था। लोग निष्क्रिय होकर देख रहे थे। मुझे लगा कि अब जीवन का संध्याकाल आ पहुँचा है। पू. बापू के सिवाय कोई दूसरा सहारा नहीं है। मैं आकाश की ओर ऊपर दोनों हाथ कर-करके पुकारने लगी :

''बापू... ! बापू... !! ॐ... ॐ... बापू... ! बापू... !! ॐ... ॐ...''

पानी में डूबे हुए मनीष को भी सीख देने लगी :

''मनीष ! बापू के सिवाय अब अपना कोई नहीं है। तू बापू को याद कर। बापू से कह कि हम तुम्हारे पास आते हैं......''

उन दिनों पू. बापू अमेरिका गये हुए थे। अगम-निगम के औलिया उन सत्पुरुष ने हजारों मील दूर, सागर-पार के देश में भी हमारी पुकार सुन ली और तुरंत गैबी (गुप्त) सहायता आ पहुँची। साबरमती के उस गहरे पानी में गोते खा रही मैं अचानक खड़ी हो गई और किसी अगम्य रीति से स्वयं तैरने लगी। मेरे पैर जमीन को नहीं छू रहे थे फिर भी मैं पानी मैं सीधी खड़ी रह गयी थी। दोनों हाथ आकाश की ओर जुड़े हुए और मुख से पू. बापू के नाम की रटन। मुझे समझ में ही न आ रहा था कि मैं किस प्रकार तैर रही हूँ।

ये सारी धमाचौकड़ी आधे घंटे तक चलते रहने के बाद दूसरे लोगों को एकाएक सत्प्रेरणा हुई और वे लोग पास आये। एक-दूसरे का हाथ पकड़कर एक लंबी मानव-जंजीर बनाकर पानी में उतरे। पानी में डुबकियाँ खाती दोनों लड़कियों तक पहुँचे। दोनों को सहारा देकर बाहर निकाला। उनके नीचे दबकर डूब रहे मनीष को ढूँढ़ निकाला। अंत में पू. बापू की असीम-असीम कृपा से हम सब बाहर निकले।

आधे घंटे के भीषण संकट काल में मनीष पूरी तरह से पानी के अंदर ही डूबा रहा किन्तु उसके पेट में पानी भर जाने जैसी कोई तकलीफ न हुई। थोड़ी देर किनारे पर बैठकर, आराम करके, कपड़े पहनकर मानो कुछ भी न हुआ हो ऐसे स्वस्थ होकर हम स्कूटर पर बैठकर केम्प हनुमान के दर्शन करके घर आये।

संसार-सागर के तारणहार पू. बापू की गैबी सहायता यदि उस दिन न मिलती तो हमारे परिवार के दो दीपक बुझ गये होते।

संसार-सागर के तारणहार पू. बापू की गैबी सहायता यदि उस दिन न मिलती तो हमारे परिवार के दो दीपक बुझ गये होते। पुरुषोत्तम मास की पूर्णाहुति एक करुण अंत बन गयी होती। परन्तु...

जा को राखे सांईया मार सके ना कोय।

हमने जब बापू को पुकारा तब बापू विदेश में थे। आज भी वह प्रसंग याद आते ही हृदय भर जाता है ..... गदगद हो जाता है..... आँखें अश्रुओं से पूर्ण हो जाती हैं। मेरे प्यारे बापू ! आप कहाँ-कहाँ से आकर हमें उबार लेते हो गुरुदेव। हजारों-हजारों, लाखों-लाखों लोगों के तारणहार मेरे प्यारे बापू के चरणो में हमारे कोटि-कोटि वंदन....!

धन्य हैं ऐसे जीवों को कि जिन्हें ऐसे मधुर बापू के लाडले साधक बनकर साधना करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है !

- जशुमती नाथालाल मिस्त्री
(आशादीप ओटो सर्विस वाले)
सी. टी. एम. चार रास्ता,
अहमदाबाद (गुजरात).

❀

मैं एक अठारह वर्षीय छात्र हूँ। जबसे मैंने मेरी प्रिय पत्रिका 'ऋषि प्रसाद' में पढ़ा कि प्रभु का 'नारायण' नाम श्रद्धा और प्रेम से चार बार स्मरण करने से मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं, तो पहले तो मैंने इसे मजाक समझा। लेकिन एक दिन आड़े वक्त पर जब मैंने इसे मन में स्मरण किया, तो मुझे आश्चर्य हो रहा था कि मेरा वह काम आसानी से सफल हो गया। अब मैं 'ऋषि प्रसाद' नियमित रूप से पढ़ता हूँ। मुझे तो यह इतनी पसंद है कि आप इसे

दो महीने की बजाय एक महीने में ही प्रकाशित क्यों नहीं करते ?

- भवानीशंकर
ग्राम बलाहाँ कलाँ, जिला महेन्द्रगढ़, हरियाणा ।

मैं २१ वर्षीय ग्रामीण ब्राह्मण हूँ । मैंने पूज्य बापू से मंत्रदीक्षा तो नहीं ली है, लेकिन उन्हें मन से अपना सद्गुरु मान चुका हूँ। मुझे बार-बार चक्कर बहुत आते थे । बहुत सारी दवाइयाँ लीं लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ । मैंने अपने एक मित्र के घर में पूज्य बापू की एक पुस्तक देखी । उसमें किसी भाई का अनुभव लिखा हुआ था, वह भी इसी के बारे में था । मैंने वहीं पर मनोमन मनौती मान ली कि अगर मेरा चक्कर आना बंद हो गया तो मैं प्रसाद चढ़ाऊँगा और 'बड़दादा' की १०८ बार प्रदक्षिणा करूँगा । उसके बाद सप्ताह भर में ही मुझे चक्कर आने बंद हो गये । पूज्य बापू की महिमा का कहाँ तक बखान करूँ ? छोटे-मोटे कई लाभ होते ही रहते हैं । अभी मुझे दीक्षा तो मिली नहीं है फिर भी पूज्य बापू की कृपा बरस रही है । पू. बापू के चरण कमलों में मेरे कोटिशः प्रणाम !

- बाबुलाल जोरा
लाटुवास, तहसील माण्डल, जिला भीलवाड़ा (राज.)

जो मनुष्य इसी जन्म में मुक्ति प्राप्त करना चाहता है उसे एक ही जन्म में हजारों वर्षों का काम कर लेना होगा । उसे इस युग की रफतार से बहुत आगे निकलना होगा । जैसे स्वप्न में मान-अपमान, मेरा-तेरा, अच्छा-बुरा दिखता है और जगने के बाद उसकी सत्यता नहीं रहती वैसे ही इस जाग्रत जगत में भी अनुभव करना होगा । बस ! हो गया हजारों वर्षों का काम पूरा । ज्ञान की यह बात हृदय में ठीक से जमा देनेवाले कोई महापुरुष मिल जायें तो हजारों वर्षों के संस्कार, मेरे-तेरे के भ्रम दो ही पल में निवृत्ति कर दें, और कार्य पूरा हो जाय ।

भारत ने हजारों ईसा पैदा किये हैं

अमेरीका से आये पादरी रेवरेंड आवर ने पुणे और उसके आसपास कुछ अशिक्षितों को ईसाई बनाया । एक दिन एक पण्डित ने उनसे प्रश्न किया :

''क्या तुमने कभी हिन्दू धर्म का अध्ययन किया है ?''

पादरी का उत्तर था : ''नहीं ।''

तब पंडित ने आवर साहब से कहा : ''हिन्दू धर्म की निन्दा और ईसाई धर्म की प्रशंसा करने से पहले आपको हिन्दू धर्म का अध्ययन तो कर ही लेना चाहिए ।''

यह बात रेवरेंड आवर को जँच गई । संस्कृत और मराठी सीख कर उन्होंने एकनाथ, ज्ञानेश्वर, तुकाराम आदि सन्तों के साहित्य का न केवल अध्ययन किया अपितु उनके जीवनचरित्र और तत्त्वज्ञान का अंग्रेजी में अनुवाद भी प्रकाशित किया । यह सब करते हुए उनका मन बदल गया और उन्होंने अमेरिकी मिशन को जो पत्र लिखा वह प्रत्येक ईमानदार मिशनरी के लिए ध्यान देने योग्य है । उन्होंने लिखा :

''भारत ने आज तक सैंकड़ों और हजारों ईसा उत्पन्न किये हैं और भविष्य में भी यहाँ अनेक ईसा पैदा होंगे । इसलिए भारत में ईसाई मत के प्रचार का कोई प्रयोजन नहीं । उसे सर्वथा बन्द कर देना चाहिए । भारत तो सत्य और धर्म का अगाध समुद्र है और प्रत्येक ईसाई को अपने मत का प्रचार न कर सत्य धर्म का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । मैं मिशन से त्यागपत्र देता हूँ और अपनी आठ लाख की सम्पत्ति, जो अमेरिका में है, मैं पुणे के भारतीय इतिहास संशोधन मण्डल को अर्पित करता हूँ । इस धन से भारतीय 'वसंत ग्रन्थों' के अनुवाद छपते रहें ।''

यदि आप संसार के प्रलोभनों एवं धमकियों से न हिलो तो संसार को अवश्य हिला दोगे ।

Registered with Registrar of Newspapers for India Under No. 48873/91

निपानिया कलाँ (जि. सिहोर, म.प्र.) में हर पूर्णिमा को प्रभात में, गर्मी हो या सर्दी, हरिनाम संकीर्तन यात्रा अखण्ड निकाली जाती है।

वापी (दक्षिण गुजरात) में बोहरा समाज की ओर से भव्य स्वागत... पुष्प स्वीकार करते हुए पू. बापू...

वापी (दक्षिण गुजरात) में आयोजित विद्यार्थी तेजस्वी तालीम शिविर।

विराट विद्यार्थी सम्मेलन एवं पू. गुरुदेव की आरती उतारते हुए छात्र-छात्राएँ..